

**TEXT CUT WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180443

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83
P96D Accession No. H 1930
Author श्रीनारायण अष्टल
Title शास्त्र देव

This book should be returned on or before the date
last marked below.

डाक्टर देव

डाक्टर देव,

अमृता प्रीतम

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रगति प्रकाशन

नयी दिल्ली

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, १४-डी, फ़ीरोज़शाह रोड द्वारा प्रकाशित
और गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित ।
श्री गोपाल वेपर मिस्त्र के ह्वाइट मिरिंग पर छपा ।
मूल्य २)

एक

: १ :

ममता कल शाम से प्रसव पीड़ा में ग्रस्त थी । आज प्रातः सूरज को प्रथम किरणों के साथ उसके उदर से एक कन्या का जन्म हुआ । दाई ने कोमल बालिका को नहलाया और मुलायम कपड़े में लपेट लिया । जीवन में प्रथम बार शहद का आस्वादन करते-करते बालिका सो गई । दाई ने नव जननी के पीड़ा से थके हुए शरीर में नवीन स्फूर्ति भरने के लिए उसकी बच्ची को उसके पास लिया दिया ।

“बीबी ! जरा देखो तो, कितनी सुन्दर है मानो रेशम का तार हो ।” दाई ने ममता बीबी से उल्लासपूर्ण स्वर में कहा । लड़के का केवल लड़का होना ही काफ़ी होता है, पर कन्या के जन्म में विशेषता प्रकट करने के लिए उसकी सुन्दरता का विशेषण उसके साथ लगाना आवश्यक हो जाता है, दाई यह बात जानती थी ।

ममता की दृष्टि लड़की पर पड़ी, फिर वहीं टिकी रही । फिर ममता ने धीरे से कहा “कितना सुन्दर है !”

दाई ने यह सुनकर सोचा कि भोली मां शायद यह समझती है कि उसके घर पुत्र ने जन्म लिया है । पीड़ा से निवाला माँ का जी रखने के लिए दाई ने भी धीमे स्वर में कह दिया “बहुत सुन्दर बच्चा है ।” ‘बच्चा’ कहकर सयानी दाई ने लड़के लड़की के भेद को छिपा लिया । फिर उसने सोचा कि वह बच्चे को उठाकर अलग लिटा दे ।

झुककर वह लड़की को धीरे से उठाने लगी। तभी ममता ज़ोर से चीख उठी और अचेत हो गई।

जगदीश ममता के पति का नाम था। अभी तक दाई ने उसे भीतर नहीं आने दिया था, वैसे बालिका के जन्म का समाचार वह सुन चुका था। ममता की चीख ने सबको घबरा दिया। घबराए हुए जगदीश ने अपनी पत्नी का सिर अपनी गोद में ले लिया। अभी उसका विवाह हुए एक वर्ष भी पूरा न हुआ था। दाई डरा रही कि यदि प्रसूति में ज़च्चा के दिल पर डर बैठ जाय तो वह बहुत बुरा होता है।

न जाने यह कमरा कैसा था। लाहौर के लारेंस बाग के पास उनकी यह कोठी भी तो नई ही थी। पहले इस घर में किसी के बालक उत्पन्न न हुआ था। जगदीश को याद आया कि उसकी मां कहती रह गई थी कि यह जगह न खरीदो, पीछे चौड़ी और आगे तंग, यह शेरमुँही जगह, पर राय साहब, जगदीश के पिताजी, बड़े सयाने आदमी थे, उन्होंने व्यापार में आज तक कभी धोखा नहीं खाया था, ऐसे मौके की जगह और इतना वाजिबी दाम, पीछे की ओर बहुत चौड़ी और आगे ज़रा कम चौड़ी, बस इतनी छोटी-सी बात पर वह यह सौदा नहीं छोड़ सकते थे, उन्होंने खरीद ली।

जगदीश को भी अपनी माँ का वह वहम कभी भी वहम से अधिक कुछ न प्रतीत हुआ था, किन्तु आज उसके हृदय में अपने पिता के प्रति एक प्रकार का रोष उत्पन्न हो गया। उसकी माँ शायद सच ही कहती थी। पर क्या इस शेरमुँही जगह का पंजा सधसे पहले उसके हृदय पर ही पड़ना था? जगदीश घबरा गया। वह ममता के पीले म्लान मुख की ओर देखता रहा। कमज़ोरी के पसीने से ममता का मुँह और सिर सब भोग गया था।

भागदौड़ के कारण सारी कोठी में एक खलबली-सी मच गई। डाक्टर ने ममता के ताकत का इंजेक्शन लगाया। बालिका को उत्पन्न

हुए कोई एक घण्टा हुआ था। डाक्टर ने बताया कि ममता की दुर्बलता के अतिरिक्त और कुछ न था।

ममता सचेत हुई। जगदीश ने उसे बहुत दुलाराया, पर ममता के मुख पर से भय दूर होने में न आता था। जगदीश पूछता रहा कि क्या हुआ था? क्या वह डर गई थी? क्यों डर गई थी? पर ममता ने कुछ उत्तर न दिया।

कितनी ही देर बाद ममता ने कहा कि दाईं उसके लड़के को उठा कर ले जाने लगी थी।

जगदीश हँसने लगा, डाक्टर भी हँसने लगा—“देखिये, यह है आपका लड़का” डाक्टर ने नन्ही-बालिका को ममता की चारपाई पर लिटा दिया।

जगदीश बड़ी देर तक आश्चर्य करता रहा। वह यह कभी भी न सोच सकता था कि उसकी इतनी समझदार पत्नी पुत्र के स्थान पर कन्या का जन्म हो जाने को इतना महसूस करेगी, यद्यपि यह बात सन् १९२६ की थी, उस समय की जब कि साधारण लड़कियाँ घरेलू जीवन के बाहर कम दिलचस्पी लेती थीं। पर ममता तो बड़ी ही चतुर, समझदार लड़की थी। बातचीत करते हुए जगदीश ने कई बार यह अनुभव किया था कि ममता जीवन के प्रत्येक पहलू पर बहस कर सकती थी, प्रायः सभी विषयों की उसे पर्याप्त जानकारी प्राप्त थी, समाज और राजनीति के कितने ही विषय उसके साधारण वार्तालाप का प्रसंग होते थे। उसके पास कई परीक्षाओं की डिगिरियाँ थीं। ऐसी सुन्दर और सुयोग्य स्त्री की तुलना में कई बार जगदीश ने अपने आप में हीनता का अनुभव किया था। जगदीश की बिरादरी में उस जैसी आब-ताब वाली और कोई लड़की नहीं थी। जगदीश अपने मित्रों से अपनी पत्नी का परिचय बड़े गर्व के साथ कराता था। ममता की सुन्दरता, उसका सलीका, और इन सब से बढ़ कर उसकी बोलचाल जगदीश के क्लब में सदा एक प्रकार की ईर्ष्या जगा देती

थी। जगदीश के मित्रों को ईर्ष्या होती थी जगदीश के सौभाग्य से, और उन मित्रों की पत्नियों को ईर्ष्या होती थी जगदीश की पत्नी से। किन्तु इस दूसरी ईर्ष्या के भाव ममता की मृदु मधुर मुखाकृति के सामने आते ही दब जाते थे।

आज जगदीश आश्चर्यचकित था कि पुत्र उत्पन्न होने का विचार ममता के मन में किस प्रकार समाया हुआ था। डाक्टर ने जगदीश को बताया कि पुत्र-पुत्री के भेद का विचार केवल पुरातन विचारधारा के प्रभाव के कारण या पुत्री को घटिया और पुत्र को उत्तम सन्तान समझने के कारण ही उत्पन्न नहीं होता वरन् कभी कभी कोई स्त्री पुत्र अर्थात् पुरुष उत्पन्न करने में ही सन्तोष प्राप्त करती है। डाक्टर ने कहा कि जब ममता स्वस्थ हो जाएगी वह स्वयं इस भेद को भूल जाएगी। अभी वह दुर्बल है, उसपर यही प्रकट करना चाहिये कि यह लड़का है।

ममता नवजात बालिका को पल भर के लिए भी अपनी आंखों से आँकल नहोने देती थी। दाईं उसके सामने ही बच्चे को नहलाती, दूध देती, सुलाती और खिलाती थी।

कितने ही दिन बीत गए। डाक्टर ने ममता को अब थोड़ा बहुत चल फिर लेने और बालिका को गाड़ी में सैर कराने ले जाने की आज्ञा दे दी थी।

एक दिन ममता अपनी लड़की को कोठी के बगीचे में हाथगाड़ी में सैर करा रही थी। जगदीश साथ साथ चल रहा था। संध्या समय की ठंड धरती पर फैली हुई थी। रात की रानी की बेल में से मन्द सुगन्ध निकलने लगी थी। ममता की लाल चुनरी की पतली काली धारियाँ उसके मुख की सुन्दरता को और भी बढ़ा रही थीं। जगदीश का पूरा जीवन उसकी दृष्टि के सामने आ गया। उसके पास बहुत सा धन था, ममता ऐसी पत्नी थी, सुन्दर पुत्री थी। उसके सरल स्वच्छ मन को जीवन अत्यन्त सार्थक प्रतीत हुआ।

हूतने में आया ने आकर ममता के हाथ से गाड़ी ले ली। लड़की के दूध का समय हो गया था। आया की पीठ मोड़ने की देर थी कि ममता का रंग उड़ गया। वह निढाल हो कर बेंच पर बैठ गई। जगदीश उसे सहारा दिए रहा। ममता संज्ञाहीन सी हो गई, “वह ले गई, वह ले गई, मेरे बच्चे को ले गई।”

डाक्टर ने जगदीश को समझाया हुआ था कि किसी प्रकार ममता के मन में बालक की मृत्यु का भय बैठ गया है, धीरे धीरे ठीक हो जाएगा, इसलिए उस समय जगदीश घबराया नहीं। पर वैसे ही उसके मन में यह विचार आया कि आया को बदल कर देखूँ, शायद किसी विशेष आकृति के मुख की ओर से ममता के दिल में डर बैठ गया हो।

नन्ही बालिका का नाम रखना था। अभी सब उसे “बेबी” ही पुकारते थे। परन्तु जब नन्ही बालिका ममता के पास लेटी होती थी, तब ममता उसे प्रायः “रंजू” कहकर बुलाती थी। वैसे भी घरों में लड़कियों का नाम रखने का विशेष उत्साह नहीं होता और फिर जगदीश ममता की छोटी से छोटी इच्छा भी पूरी कर देता था, धीरे-धीरे बालिका का नाम “रंजू” ही पड़ गया।

X

X

X

: २ :

आया बदल दी गई। जगदीश ने पहली आया से बिल्कुल भिन्न नाक-नकश वाली आया को चुना। परन्तु ममता की दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हाँ, ज्यों ज्यों नन्ही बालिका धीरे धीरे बड़ी होने लगी, त्यों त्यों ममता के चित से घबराहट कम होती गई। पहले ममता अपनी लड़की के लिए बड़ी चिन्तित दीख पड़ा करती थी, पर अब बालिका पर उसका कोई विशेष स्नेह दिखाई न देता था, वरन् कभी कभी तो बालिका के प्रति ममता की उदासीनता प्रत्यक्ष दीख पड़ती थी।

बहुत दिनों तक कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। सदा की भाँति ममता का समय ऐसे बीतता रहा मानो वह जीवन की दैनिक दिलचस्पियों से पूर्ण तथा अनभिज्ञ हो। उसका पति भी उसके इस स्वभाव से परिचित था। खटकने वाली कोई बात नहीं हुई।

एक दिन ममता अपने कमरे में बैठी हुई थी। शरद् ऋतु की हल्की-हल्की ठंड धरती पर उतरी हुई थी। नन्ही रंजू सो गई थी। जगदीश अपने एक मित्र के साथ सिनेमा देखने गया हुआ था। ममता कंबल का एक सिरा अपने पाँवों पर लपेटे पलंग पर बैठी रही। संध्या गहरी हो गई थी। ममता ने कमरे की बिजली भी नहीं जलाई। बालिका रंजू का अधबुना स्वेटर परे मेज़ पर पड़ा हुआ था। ममता का जी न किया कि चार सलाइयाँ भी डाल ले। पलंग की पट्टी के पास एक पुस्तक अधखुली पड़ी थी। शायद कुछ देर पहले ममता ने पढ़ने के लिए निकाली थी, फिर पढ़ने को जी न किया, पुस्तक वैसे ही पड़ी रही। सामने शरद् का पीला, शीतल चन्द्रमा वृक्षों की टहनियों में से झाँक रहा था। यद्यपि चन्द्रमा के मन्द प्रकाश के साथ कुछ ठंड भी कमरे में आ रही थी, ममता ने खिड़की बन्द नहीं की। वह बैठी रही, देर तक बैठी रही।

ममता सोचने लगी, शायद प्रत्येक जीवन एक बन्द कमरे की भाँति होता है, जिसकी एक खिड़की प्रकृति के विकास की ओर खुली रहती है। प्रकृति के विकास में से कभी किसी चन्द्रमा का धुँधला प्रकाश तो कभी किसी अन्धकार की कालिमा, कभी आँखों को चौंधिया देने वाला आलोक तो कभी निबिडतम अन्धकार, कभी उष्ण हवाएँ तो कभी जल-सिंचित बयार—कभी अच्छा तो कभी बुरा लगने वाला प्रत्येक दृश्य—इस जीवन रूपी कमरे में आता रहता है। अन्तर केवल इतना है कि कमरे की खिड़की का खोलना और बन्द करना मनुष्य के अपने हाथ में है और जीवन की खिड़की के पट खोलना और बन्द करना मनुष्य के वश में नहीं है।

हल्की-हल्की ठंड कमरे में फैलती गई। चन्द्रमा भी खिड़की की दिशा से ज़रा परे को हो गया था। ठंड के साथ-साथ कमरे में अँधेरा भी अधिक हो गया। अभी उजाला था, और अब नहीं है। छोटी-छोटी खिड़कियों में से भला कितनी देर तक उजाला आ सकता है ! बाकी चारों ओर तो दीवारें ही दीवारें हैं।

ममता के मन में आया कि जब वह सोती थी तो उसके सोए हुए शरीर में से कुछ जाग उठता, शरीर पलंग पर ही पड़ा रहता, परन्तु जागने वाला 'कुछ' पलंग पर से उठ जाता और जीवन के दीवारों से घिरे हुए कमरे में जो छोटी-सी खिड़की थी जिसमें से अकारण ही बाहर का प्रकाश भीतर आता, अकारण ही बाहर का अंधकार भीतर आ डराता, उस सदा खुली रहने वाली खिड़की में से निकल कर प्रकृति की विशालता में खोजाता, घूमता-फिरता इधर-उधर भटकता, पवन के पंख लगा कर कुछ खोजता—सोई हुई ममता का शरीर धक-धक करता रहता, पर वह जागने वाला 'कुछ' जीवन की उस सदा खुली रहने वाली खिड़की का उचित अथवा अनुचित उपयोग करता।

फिर ममता के मन में आया कि जीवन के दीवारों से घिरे हुए कमरे में जो छोटी-सी खिड़की है वह बन्द हो जाए, रातों को आने वाले स्वप्न जो कभी अत्यन्त मधुर तो कभी अत्यन्त कड़वे होते थे, दीखने बन्द हो जाएँ, उसे कमरे के बाहर का कोई दृश्य दिखाई न दे, वह उस कमरे से हिलमुल जाए, उस कमरे की दीवारों में रच जाए, वह उस कमरे की वस्तुओं से बातें करे, वह भी कमरे की एक वस्तु बन जाए.....

परन्तु जीवन की वह खिड़की जिसे बना कर भगवान उसके पट लगाना भूल गया था और इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति के दीवारों से घिरे हुए जीवन में वह छोटी-सी खिड़की सदा के लिए खुली रह गई थी, ममता के जीवन में किस प्रकार बन्द की जा सकती थी !

मनुष्य की आज तक की कल्पना और सहृदयता का इतिहास अंकित करने वाली लेखनी से जो स्वप्न-पूरित भाषा प्रवाहित होती है उसकी ख़ासा भी वास्तव में वही खिड़की है जिसमें से निकल कर मनुष्य की चेतनाएँ और उसकी अस्पष्ट अभिलाषाएँ प्रकृति की विशालता में स्वच्छन्द विचर सकती हैं ।

ममता अकारण ही अपलक दृष्टि से खिड़की के बाहर देखती रही । कमरे के परदे लगे हुए दरवाज़े को किसी ने खटखटाया; जगदीश सिनेमा देख कर लौट आया था । कमरे की बत्ती जली, ममता चेतन हुई । जगदीश ने कहा कि जिस मित्र के साथ वह फ़िल्म देखने गया था वह भी उसके साथ आया है और बाहर के कमरे में बैठा है । ममता उठी, उसने किसी नौकर को नहीं जगाया, स्वयं बिजली के स्टोव पर चाय का पानी रख दिया ।

थोड़ी देर में बाहर के कमरे में मेज़ के हर्द-गिर्द बैठे प्यालों की खनखनाहट किए बिना तीनों चाय पीने लगे । जो मित्र आया था वह कोई नया ब्यक्ति नहीं था, जगदीश के क्लब का एक मैम्बर था । इस घर में बहुत घुला-मिला भी नहीं था तो ममता के लिए सर्वथा अपरिचित भी नहीं था ।

“भाभी ! आप हमारे साथ फ़िल्म देखने नहीं चलीं, चलतीं तो शायद पसन्द आ ही जाती, कोई इतनी बुरी भी नहीं थी” जगदीश के मित्र ने चाय पीते हुए कहा । ममता के मुख पर कुछ ऐसी मुस्क राहत आ गई कि जगदीश के मित्र के हृदय में अपनी कही बात के प्रति असन्तोष-सा हो गया । ममता कभी-कभी क्लब चली जाया करती थी; वहाँ जगदीश के मित्र उसकी बोलचाल और चतुराई से बहुत प्रभावित हुए थे । इसीलिए जगदीश के इस मित्र ने अपनी बात ज़ोरदार बनाने के लिए कहा—“नायिका का अभिनय सारे चित्र पर छाया हुआ था ।”

“मुझे शेक्सपीयर को वह पंक्तियाँ बहुत पसन्द हैं कि जीवन एक रंगमंच है और हम सब इसके अभिनेता हैं”, ममता ने चाय की घूँट भरते हुए कहा ।

“उसका अभिनय जीवन के बहुत निकट था”, जगदीश के मित्र ने फिर कहा ।

“फ़िल्मों में जब अभिनय को जीवन का रूप दिया जाता है तब चित्र बढ़िया हो जाते हैं, पर.....” कहते-कहते ममता रुक गई ।

“भाभी ! आपकी फ़िलासफी भी तो शेक्सपीयर की-सी है, ठोस, और सशक्त । आपसे बात करके मुझे बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है । हाँ, आप ने बात तो पूरी ही नहीं की.....” जगदीश के मित्र ने कहा । जगदीश भी मुसकरा उठा, ममता भी मुसकरा उठी, किन्तु दोनों की मुसकराहट में बड़ा अन्तर था ।

“कुछ नहीं । मैं सोच रही थी कि जब वास्तव में जीवन को अभिनय का रूप दिया जाता है, तब तो वह जीवन उत्तम नहीं कहा जा सकता” ममता हँसने लगी ।

“भाभी ! मैं पूरी तरह समझा नहीं । क्या आपका यह विचार है कि जीवन प्रायः कोरा अभिनय ही होता है ? इतना मैं अवश्य मानता हूँ कि हमारे दैनिक व्यवहार में बनावट का अंश बहुत होता है परन्तु जब जीवन विशुद्ध रूप में जीवन बन कर हमारे समक्ष आता है ऐसे अवसरों की भी तो कमी नहीं है ।”

“हाँ, पुस्तकों में अवश्य विशुद्ध रूप में आता है”, ममता मुसकराने लगी । ममता का यह सदा का स्वभाव था कि वह बहस के विवादास्पद भाग को मन्द-मन्द मुसकराते हुए चुने हुए शब्दों में कह दिया करती थी । विपरीत विचार ज़ोरदार होते हुए भी उसके गम्भीर शब्दों के सामने कमजोर प्रतीत होने लगता था ।

“केवल पुस्तकों में ही, भाभी ?”

जगदीश ने अभी तक इस वाद-विवाद में कोई भाग नहीं लिया

था। वह आराम से चाय पी रहा था। उसका मित्र ही बोल रहा था।

“जिस प्रकार अपूर्ण अभिलाषाएँ स्वप्न बन कर सम्मुख आती हैं, उसी प्रकार जीवन में प्रेम के निर्वाह में जो अपूर्णता अनुभव की जाती है वही पुस्तकों में सफल प्रेमनिष्ठा के रूप में आती है” कहते-कहते जो ममता का ध्यान सब के प्यालों की ओर गया तो उसने देखा कि उनमें से चाय पी जा चुकी है। उसने प्यालों में नई गरम चाय डाली। चाय की गरम भाप मेज़ पर उड़ने लगी।

“निश्चल प्रेमनिष्ठा और अटूट प्रेम जीवन का आदर्श है। पुस्तकों और चित्रों में सदा आदर्श प्रस्तुत किया जाता है कि जिससे जीवन का वह स्वप्न सदा सामने बना रहे” जगदीश ने कहा।

“विश्वशान्ति भी तो संसार का आदर्श है, किन्तु इतने भयानक युद्ध का भय शायद पहले कभी न रहा होगा” ममता ने कहा। दोनों सुनने-वालों में से कोई भी न बोला।

“मुझे डर है कि प्रेमनिष्ठा और प्रीति किसी दिन केवल पुस्तकों में आने वाली एक कहानी बनकर ही न रह जाएँ” ममता ने कहा। जगदीश और उसके मित्र को अपना क्लेश याद आ गया—किस प्रकार क्लेश के मैम्बर लड़कियों की बातें करते थे, सामने बैठे हुए मित्रों की परिनियों पर आक्षेप करने से भी न झिझकते थे। एक-दूसरे से हल्के मज़ाक करते थे। बहुते धनी वर्ग में सभ्यता की आड़ में सब कुछ जायज़ होता है। समाज के कठोर नियम तो केवल मध्य वर्ग का ही शोषण करते हैं।

किसी ने भी वाद-विवाद को लम्बा करने की चेष्टा न की। तीनों चाय पीते रहे। काफी देर हो गई थी। जगदीश के मित्र ने जाने की आज्ञा माँगी, अपनी सभ्यता के अनुरूप उसने ममता का “अच्छी चाय” के लिए धन्यवाद किया, और फिर चला गया।

×

×

×

जाड़ों की दोपहर थी। सूरज की हल्की किरनें खिड़की में से होकर कमरे में बिछे लाल कालीन पर पड़ रही थीं। खिड़की के पास ही ममता सफ़ेद साड़ी पहने सफ़ेद दीवार के सहारे से निश्चल खड़ी हुई थी। खिड़की के नीचे महकती हुई फुलवारी थी, किन्तु ममता उधर नहीं देख रही थी। खिड़की के पास दीवार पर दान्ते और बीत्रीस के प्रथम मिलन का चित्र था जो जगदीश ने नया खरीदा था, पर ममता उसे भी नहीं देख रही थी। शरद् ऋतु के निस्तेज सूरज का पीला प्रकाश अवश्य फैला हुआ था, पर इसके अतिरिक्त आकाश पर और कुछ भी नहीं था। चाँद तारों-भरी रात का तो प्रश्न ही क्या, सामने विभिन्न आकार बनने वाले बादल भी नहीं थे जिन्हें देखकर मन में अनेक कहानियाँ बनने और मिटने लगती हैं। किन्तु ममता शून्य में एकटक ताकती ही रही।

जगदीश जब कमरे में आया उसे ममता सफ़ेद दीवार का ही एक अंग प्रतीत हुई—चुप, निश्चल, एक प्रस्तर-प्रतिमा।

“ममता !” जगदीश ने पुकारा।

ममता खिड़की के पास से आकर जगदीश के पास बैठ गई। न जाने, ममता ने सामने आकाश के शून्य में से अपने नेत्रों में क्या भर लिया था कि जगदीश को उसकी आँखों में एक विचित्रता का अनुभव हुआ। उसने सीधे यही प्रश्न किया :

“ममता ! यह तुम्हारी आँखों में क्या है ?”

“आज ही देखा है आपने या कभी पहले भी ?”

“कभी कभी, पहले भी...”

“आपको कैसा लगता है, अच्छा या बुरा ?”

“डरावना।”

“अच्छा तो इससे डर लगता है आपको ? लगना ही चाहिए”
ममता हँस पड़ी।

“पर यह क्या है ?”

“परछाईं ।”

“किसी की ?”

“जीवन की ।”

“ममता ! न मैं पहेलियाँ बुझाता हूँ, न बूझना चाहता हूँ । मुझ-जैसे सीधे आदमी से सीधी बातें ही किया करो ।”

“पर भग्य की रेखाएँ तो सदा सीधी नहीं होतीं” ममता के मुख से लापरवाही झलक रही थी ।

“मैं इन हाथों से पूछता हूँ कि मेरे भाग्य की रेखाएँ सीधी खिंची हैं या नहीं” जगदीश ने ममता के हाथ अपने हाथों में ले लिये ।

“बिलकुल गलत बात, यह बिचारे भाग्य बनाने योग्य कहाँ” ममता ने अपने हाथ छुड़ा लिए, “मेरा विचार है कि जैसे एक कीड़े के पाँवों में स्याही लगा कर उसे छोड़ दो तो वह अनजाने ही टेढ़ा-मेढ़ा चलता हुआ कीड़मकोड़े बना देता है, उसी प्रकार विधाता का हाथ मनुष्य के भाग्य की रेखाएँ बना देता है ।”

“यह तो कुछ बात न हुई ।”

“मैं कब कहती हूँ कि यह कोई बात है ।”

“तुम जितना जी चाहे उलझन बनती जाओ, ममता ! मैं सुलझा लूँगा ।”

“जैसे ईश्वर रखे वैसे रहना चाहिए, व्यर्थ मैं विधि के विधान में हस्तक्षेप न करना चाहिए ।”

“ममता, तुम यह बात कह रही हो कि जैसे ईश्वर रखे वैसे रहना चाहिये ? कभी तुम स्वयं कहती हो कि मनुष्य अपने कर्मों द्वारा ऐसी ज्वाला उत्पन्न करे कि जो समाज के गलत मूल्यों को भस्म कर डाले । कभी तुम विधाता की, संसार की, सभ्यता की, कानून की अत्यन्त कटु शब्दों में भर्त्सना करती हो । अब कहती हो कि जैसे ईश्वर रखे वैसे ही

रहना चाहिए। इन बातों के कहने का तुम्हारा ढंग रोचक अवश्य है परन्तु एक बात दूसरी के सर्वथा विपरीत भी है”

“मैं स्वयं भी तो जैसी एक दिन होती हूँ अगले दिन वैसी नहीं होती” कहकर ममता हँसने लगी।

“कभी वह समय था कि तुम रंजू के लिए हर समय चिन्तित रहती थीं, अब उसके प्रति तुम्हारी उदासीनता का कोई अन्त नहीं है। रंजू तो सदा ही रंजू है।”

“रंजू सदा रंजू नहीं है। कभी वह मेरा अपना रंजू है, कभी वह केवल आपकी रंजू”—ममता के मुख पर मानो किसी ने लाल रंग पोत दिया हो! लाल पत्थर के बुत के भाँति वह सीधी तनी हुई बैठी रही।

“तुम्हारी रंजू मेरी रंजू है, मेरी रंजू तुम्हारी रंजू” जगदीश ने ममता से प्रेमपूर्ण स्वर में कहा।

“मेरा रंजू……” ममता काँपने लगी। “मेरा रंजू न जाने कहाँ है।” ममता थरथर काँप रही थी। जगदीश को लगा कि अभी डाक्टर को बुलाना पड़ेगा, शायद ममता की फिट पड़ रहा है। किन्तु उसे अधिक देर तक इस सम्बन्ध में विचार करना न पड़ा। ममता का कंपन बन्द हो गया। स्वस्थ, निरोग,—एक बहादुर सैनिक की भाँति—ममता तनकर बैठ गई।

“आप समझते होंगे कि मैं शायद पागल हो गई हूँ, मुझे हिस्टीरिया है, मुझे प्रसूत का कोई रोग है। मुझे कुछ भी नहीं है। मैं किसी रंजू की भाग्यहीन माँ हूँ।”

“ममता, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।”

“आप बैठिए, मुझे कुछ नहीं हुआ है। मेरा दिमाग खराब नहीं, मेरा भाग्य अवश्य खराब है। आप रोज़ परेशान होते हैं, मुझे अपनी अपेक्षा आप पर अधिक तरस आता है।”

“ममता !”

“आपके साथ विवाह होने से पहले मैं कुमारी नहीं थी ।”

जगदीश एक दीर्घ श्वास खींच कर रह गया ।

“मैं केवल पत्नी ही नहीं, एक बच्चे की माँ भी बन चुकी थी ।”

भय आज ममता से कोसों दूर था ।

जैसे भावी से टक्कर होते देख मनुष्य कई बार अपने आप को लौहवत् दृढ़ बना लेता है, वैसे ही जगदीश ने अपने आप को सँभाला ।

“तो क्या वह पति अब जीवित नहीं ?” जगदीश ने पूछा ।

जीवित है । उसका नाम देवराज है । उन दिनों वह डाक्टरी पढ़ रहा था ।” ममता ने कहा ।

जगदीश आगे कुछ न बोल सका,—मानो सागर लहरों से पूर्ण हो गया हो, लहरों के अतिरिक्त आर-पार कुछ भी दृष्टिगोचर न होता हो !

“आप शायद जानना चाहेंगे कि वह कहाँ है । पर यह मैं स्वयं भी नहीं जानती । मेरा वह विवाह मेरे माता-पिता ने नहीं किया था ।” ममता हँसने लगी । “वह विवाह मैंने स्वयं किया था । वह गलती थी, पाप था, जो कुछ भी था, वह मैंने स्वयं किया था, उसके भले-बुरे के लिए मैं उत्तरदायी हूँ । मेरे बच्चा होने को था । मेरे माता-पिता ने हमारी प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया, हमारे जीवन नष्ट कर दिए, मेरी आँखों पर दीवारों की पट्टी बाँध दी गई, फिर मैं उसे न देख सकी । मेरा बच्चा पैदा होते ही मुझसे छीन लिया गया.....” ममता के हृदय में हिंसा और अहिंसा दोनों की भावनाएँ जाग्रत हो रही थीं ।

जगदीश को ऐसा लगा मानो गरम-गरम लावा उसके शरीर पर बह रहा हो । उसकी गर्मी को अनुभव करता हुआ जगदीश बैठा रहा । फिर लावा ठण्डा होता गया, पत्थर बनता गया । जगदीश जमे हुए सिक्के की भाँति, मूर्तिवत्, वहीं बैठा रहा ।

ममता ने अपनी बाहें जगदीश के गले में डाल दीं । फिर कहने लगी “हम दोनों एक समान दया के पात्र हैं । किसी ने मेरे जीवन को

नष्ट किया, मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया। वास्तव में क्या मैं, क्या आप, क्या कोई और, सब साधन मात्र हैं। हम कर्म करते अवश्य हैं, पर कर्त्ता नहीं हैं। तोड़ने फोड़ने के लिये साधन उत्तरदायी नहीं, वरन् साधनों का प्रयोग करने वाले हाथ—हमारे भाग्य—उत्तरदायी हैं।”

ममता की यह बातें हुई लोहे की गरम सलाखों की भाँति जगदीश के शरीर में चुभ रही थीं, वह घबराकर बोला—

“ममता ! यह सब बातें तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताईं ?”

“कभी आवश्यकता ही नहीं समझी।”

“क्या सच्चाई को सच्चाई की आवश्यकता नहीं थी ? मैं सच्चे हृदय से तुम्हें अपनी पत्नी समझता रहा हूँ, पर तुमने मुझे कभी भी सच्चे हृदय से अपना पति नहीं माना।”

“मेरा हृदय भग्न हुए बहुत लम्बा समय बीत चुका है, मेरे लिए अब झूठ और सच बराबर हैं।”

“फिर आज क्यों बता रही हो यह सब ?”

“क्योंकि झूठ और सच बराबर हैं। यदि झूठ बोला था, तो क्या ? और जो अब सच बोल रही हूँ, तो क्या ? पर आप भूल कर रहे हैं, मैंने कभी झूठ नहीं बोला, मैंने आपसे यह कभी नहीं कहा कि मुझे आपसे प्रेम है।”

“पर तुम मुझसे प्रेम करती रही हो। मैं कैसे भूल सकता हूँ, तुम मेरे साथ हँसती खेलती……”

हाँ, प्रेम करती रही हूँ यदि हँसना खेलना ही प्रेम होता है……”

“तुम नहीं जानतीं, ममता, तुम इस बने बनाए घर का किस प्रकार नाश कर रही हो।”

“विनाश के शिकार से आप यह प्रश्न कर रहे हैं ?”

“यह रंजू भी तुझसे बिछुड़ सकती है”—जगदीश को रंजू के जन्म का समय स्मरण हो आया। शायद ममता के हृदय पर वही पहला

डर बैठा हुआ था कि बच्चा पैदा होते ही उससे छीन लिया जाएगा, तभी वह डरती थी, अचेत हो-हो जाती थी, काँप उठती थी।

“वह रंजू चला गया, यह रंजू भी चली जाए !” ममता ने कुछ ऐसे कहा मानो सहज स्वभाव ही कह दिया हो।

“तुम्हें इस रंजू से प्रेम नहीं ?”

“मेरा जो करता है मैं कह दूँ, बिलकुल नहीं। वह रंजू मेरे प्रेम की सजीव मूर्ति था, यह रंजू ज़बरदस्ती का पत्थर है जिसे मैंने नौ महीने अपने पेट में ढोया है।” ममता के मुख पर फिर वही लाली, फिर वही हिंसा की भावना फलक आई।

“मैं ने तुम्हारे साथ कभी ज़बरदस्ती नहीं की।”

“आप तो एक हथियार मात्र हैं, कर्म हैं, कर्ता नहीं। कर्ता है वह समाज जिसने मेरे प्रेम को अपने पाँवों तले कुचल दिया।”

“तो तुमने समाज से बदला लिया है ?”

“बिलकुल नहीं। मेरी यह इच्छा कभी नहीं थी कि मैं और पति चुनूँ, मैं और बच्चों को जन्म दूँ। समाज ने स्वयं मेरा हाथ पकड़ कर मुझे इस पथ पर डाला है।”

“किन्तु तुम समाज से अपना हाथ छुड़ा सकती थीं।”

“काश ! आप जानते कि समाज के हाथ कैसे लोहे के पंजे होते हैं।”

“परन्तु लोहे के पंजों से भी बलवान हाथ इस संसार में ही होते हैं।”

“मैं मानती हूँ, भँवरों में फँस जाना मानवीय दुर्बलता है। मुझसे वह भूल हुई। परन्तु भँवर का अनुमान किनारे पर बैठकर न लगाइये, जल में डुबकी लगाकर देखिए।”

“तो क्या, ममता, तुम्हारे पथ पर मैंने ही आना था ?” जगदीश को स्वयं अपने भाग्य पर दया आ गई।

“जब आंधियाँ आती हैं तब किसे पता होता है कि कौन सी

मिट्टी उड़कर किस पथ पर जा पड़ेगी ” ममता ने कहा ।

“ तुम जानती हो, तुम्हारा वह पति कहाँ है ?”

“ नहीं । मुझे बताया गया था कि अब वह मुझसे विवाह नहीं करना चाहता । मैं फिर उसने कभी नहीं मिली ।”

“ क्या तुम्हें अब उससे प्रेम नहीं ?”

“ प्रेम उसी से किया है, उसके सिवा और किसी से नहीं । पर अब मैं उससे मिलना नहीं चाहती ।”

“ शायद अब तक उसका विवाह हो चुका हो ।”

“ शायद ”

“ और तुम्हारी आराध्य मूर्ति टूट चुकी हो ।”

“ मुझे टूटी हुई या सम्पूर्ण कोई भी मूर्ति नहीं चाहिए । वह कल्पना का अत्यन्त सुन्दर चित्र बनकर मेरे सामने आया था, मेरे रोम रोम में समा गया था । वह सिहरन मेरे शरीर में अब तक है । वही मेरी स्मृति है—वही मेरा जीवन है ।”

“ इसका यह मतलब है कि तुम्हारा प्रेम अभी भी जीवित है ?”

“ प्रेम शायद मरना नहीं जानता ।”

“ ममता तुम उस की खोज कर सकती हो, मैं रुकावट नहीं बनूँगा ।”

“ मैं उसे प्राप्त करना नहीं चाहती । मुझे बताया गया था कि उसे अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं । मैं कंधों पर ढोया जाने वाला बोझ नहीं हूँ । जीवन के पथ पर सहचरी थी, फिर साथ छूट गया, एक दूसरे की आवश्यकता न रही । उसका पथ और है, मेरा पथ और ।”

“ ममता ! क्या तुम इन शब्दों का अर्थ पूरी तरह समझती हो ?”

“ हाँ ” इसका अर्थ यह है कि यदि आप मुझे बोझा समझते हों तो मैं कभी भी आप के कंधों का बोझा बनने को तैयार नहीं ।”

“ तुम्हारा वह बच्चा कैसा है ?”

“मैं क्या जानूँ। उसे मेरे माता-पिता ने किसी हस्पताल की दया का पात्र बना दिया। हस्पताल की लेडी डाक्टर ने मुझसे दस दिन तक बच्चे को दूध पिलाने के लिए कहा था ताकि वह बच सके। दस दिन तक मैं उसे अपनी छाती से लगाए रही। फिर क्या हुआ, मैं कुछ नहीं जानती। जीवन की आंधी उसे किस पोर ले गई, मुझे कुछ पता नहीं।” ममता सब कुछ हारे हुए जुगारी की भाँति बैठी रही।

“यह रंजू अभी बच्ची है, परन्तु इस रंजू से भी तुम्हें अलग होना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा प्रभाव.....” जगदीश धवरा गया। फिर बोला “अपने विचार से तुम चाहे अपने आप को ठीक समझो, बिलकुल ठीक, परन्तु मैं रंजू को और ही ढंग से पालना चाहता हूँ।”

“आप जो कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ।”

“जितना रुपया कहो, मैं तुम्हें दे सकता हूँ। हर महीने भेज सकता हूँ। परन्तु रंजू को यह कभी पता न चले कि तुम उसकी माँ हो।”

“इसका मतलब यह है कि आप अपना रास्ता मुझसे अलग करना चाहते हैं? मैंने अभी आप से कहा था कि मैं कंधों पर ढोया जाने वाला बोझ नहीं हूँ। अच्छा मैं चली जाऊँगी।” ममता शान्ति की मूर्ति-सी प्रतीत होती थी। जगदीश ने उसे उससे अधिक सुन्दर कभी नहीं देखा था। न जाने उसके मन में क्या विचार आया।

“मुझे तुमसे सहानुभूति है, ममता !” जगदीश उसके मुख की ओर देखता रहा।

“जल की तेज़ धारा में बहे जाते दो डूबने वाले व्यक्तियों को एक दूसरे से सहानुभूति होती ही है।” ममता का मुख प्रज्वलित दीपशिखा की भाँति देदीप्यमान था।

“मेरा विचार है, तुम्हें मेरी नैनीताल वाली कोठी अवश्य पसन्द आ जाएगी।” जगदीश ने ममता का भविष्य बनाने की चेष्टा की।

इतने दिनों से ममता उसकी पत्नी थी, उसकी प्रेयसि थी ।

जगदीश की इच्छा हुई कि वह लाहौर छोड़कर चला जाय, माता-पिता को छोड़ कर चला जाय, रंजू को छोड़ कर चला जाय, उनका भविष्य उनका हवाले करके वह ममता को लेकर चला जाय । किसी ऐसी जगह जहाँ उसकी सम्भ्रता उसे उलाहना न दे सके, जहाँ लोग उन पर उँगलियाँ न उठा सकें, जहाँ ममता का पहला प्यार फिर न उभर सके, न उसके अपने संस्कार ही पुनः जाग्रत हो सकें—बस वह हो और ममता हो, ममता केवल उसकी हो, और किसी की न हो, याद की भी न बन सके ।

“मुझे कुछ नहीं चाहिये । मैंने पतिन के रूप में आप को कुछ दिया ही नहीं । यदि दिया होता तो अपने पत्नीत्व को इस प्रकार न बेचती । बीते हुए पत्नीत्व के नाम पर मासिक खर्च के लिए आपसे भीख न माँगती । हमारा साथ छूट गया, एक-दूसरे के प्रति चाह समाप्त हो गई है । मेरा मार्ग और है, आप का और....” मैं इसमें भी प्रसन्न हूँ । उस रंजू का मुझे पता नहीं, परन्तु इस रंजू की ओर से मुझे सन्तोष है । इसके सिर पर आपका हाथ है । और फिर मेरी अपेक्षा यह आपकी अधिक है ।” ममता और दिनों की अपेक्षा बहुत शान्त और सुन्दर दीख पड़ रही थी । वह जगदीश के पास से उठी, चारों ओर एक बार दृष्टि घुमा कर देखा और धीरे से कमरे के बाहर चली गई ।

जगदीश का मन किया कि वह ममता को पकड़ कर ले आए, उसे अपनी भुजाओं में कस ले और चिल्ला उठे—“मुझे तुम्हारी आवश्यकता है, तुम्हारा और मेरा पथ एक ही है, एक ही है ।”

परन्तु जगदीश पत्थर के बुत की तरह बैठा रहा । उसकी जीभ पत्थर का एक टुकड़ा बन कर रह गई । पत्थर को तोड़ कर देखिए कभी-कभी उसमें से कोई जीता-जागता कीड़ा निकल आता है । यदि उस समय कोई जगदीश को झकझोरता तो उसे पता चलता कि उस

पत्थर बने हुए शरीर में भी जीते-जागते जन्तु की भांति एक दिल जोर-जोर से धक-धक कर रहा था ।

शायद अब तक ममता कोठी का फाटक भी पार कर चुकी थी ।

×

×

×

: ४ :

ममता चली गई । दिन बीतते गए । एक दिन जगदीश ने खिड़की से देखा, नन्ही रंजू बाहर बगीचे में खेल रही थी, आया उसके पास थी । रंजू अब छः सात कदम चल लेती थी । उसकी आया थोड़ी बहुत पंजाबी बोलने लगी थी । रंजू बैठी होती, तो आया कहती “आपे, आपे” । रंजू हँसती, टोंगों पर, पैरों पर, पूरा भार डालती, बिना सहारे भार को बराबर करने के लिए हाथों को तोलती, फिर अपने आप खड़ी हो जाती, और फिर इस विजय पर और हँसती, और यह देखकर कि रंजू अपने आप खड़ी हो सकती है आया को चकित कर देती । फिर दायीं पैर उठाती नन्ही रंजू का छोटा-सा शरीर ज़रा डोल जाता, वह गिरने लगती, परन्तु उसे अपने आप को थोड़ा सभालना आ गया था । वह पग बढ़ाती, पहला... दूसरा... तीसरा... चौथा... पाँचवाँ... और फिर हँसते-हँसते छठे सातवें पग पर आया की गोद में जा गिरती । कभी-कभी आया के पास पहुँचने से पहले ही गिर पड़ती, कभी आगे, कभी पीछे ।

जगदीश खिड़की से देखता रहा । आया ने एक छोटा-सा फूल तोड़ कर रंजू के बालों में अटका दिया । नन्हीं बालिका फूल की सुन्दरता तथा अपने बालों को देख तो नहीं सकती थी, किन्तु आया के हर्ष में, आया की हँसी में, उस सुन्दरता का अनुभव वह कर सकती थी, वह भी हँसती रही । आया ने दौड़ कर घड़ी में समय देखा । रंजू के दूध का समय हो गया था । आया उसे भीतर ले जाना चाहती थी, परन्तु रंजू जाती ही न थी । आया बार-बार दूध का नाम, बोतल का नाम लेती थी, परन्तु

इस समय शायद रंजू को दूध की अपेक्षा खेल में अधिक स्वाद आ रहा था, वह भीतर जाती ही न थी। सयानी आया बच्ची के दूध का समय कैसे बिगाड़ सकती थी। उसने रंजू को ज़बरदस्ती उठा लिया। रंजू मचल गई और रोने लगी। आया उसे हाथों में से निकल-निकल जाती बच्ची को सँभाल कर भीतर ले गई।

जगदीश खाली बगीचे की ओर लाकता रहा। अनजाने ही उसके मुँह से एक आह निकल गई। जगदीश सोचने लगा, आया एक मशीन होती है, घड़ी की टिक-टिक को देखकर वह हँसती है, घड़ी की टिक-टिक को देखकर वह सोती, जागती, खेलती और खाती है। बारह बजे से लेकर दो बजे तक वह बच्चे को सुलाएगी, दो बजे से चार बजे तक उसे खिलाएगी चार बजे वह दूध पिलाएगी। उसे क्या यदि बच्चा और सोना चाहता है, उमे क्या यदि बच्चा और खेलना चाहता है या निश्चित मात्रा से एक आउन्स दूध अधिक पीना चाहता है। मशीन की हथी, मशीन की सूई, उसके खिलाने में मशीनी पट्टा, उसके हँसाने में मशीनी पट्टा। ठंडी, निर्जीव, पत्थर जैसी सख्त, लोहे की मशीन, जिसमें माँस की सजीवता, रक्त की उष्णता, नाड़ियों का जाल कुछ भी नहीं। मशीन चल रही है, उसके ग्रंथों में कर्त्तव्य का तेल है, वह बिगड़ती नहीं, वह रुकती नहीं, मशीन चल रही है।

जगदीश सोचता रहा, रंजू से उसकी माँ छिन गई, माँ की गोद, माँ का आँचल. माँ का वात्सल्य, माँ का प्यार.....। जगदीश ने खाली बगीचे की ओर से मुँह फेरा और कमरे में देखा।

ममता के चित्र अभी तक कमरे में लगे हुए थे। वह साहस नहीं कर सका था कि नौकरों से उन्हें उतार देने के लिए कह दे। नौकर उन चित्रों को प्रतिदिन झाड़पोंछ देते थे। वह वैसे ही साफ़, सुथरे और चमकते हुए जगदीश के कमरे में लगे हुए थे।

कभी-कभी जब जगदीश कमरे में आता, कमरे का परदा हटाता,

एक पग भीतर धरता, सामने लगे हुए ममता के बड़े चित्र से उसे यह भ्रम होता कि ममता कमरे में खड़ी है। जगदीश घबरा जाता, भुंक्लता उठता, कुछ अपने आप से, कुछ उम चित्र से। किन्तु आज भी वह चित्र कमरे में ही था। जगदीश को साहस न होता था कि वह ममता की बाँह पकड़ कर उसे कमरे से बाहर निकाल दे। अपने मन में वह चाहता था कि किसी दिन अपने आप ही यह चित्र यहाँ से उतर जाय। उसी प्रकार जैसे ममता अपने आप चली गई, यह चित्र यहाँ से उतर जाय, उसे कहना न पड़े, उसे उतारना न पड़े।

जगदीश सोचता, ममता समझदार थी, जाने के लिए उससे कहना न पड़ा। किन्तु चित्र अनजान है, ज़िद्दी है, उसके कमरे में अड़ कर बैठा हुआ है, ज़िद्द कर के बैठा हुआ है। जगदीश को इस ज़िद्दी चित्र पर क्रोध आ गया। ममता के बड़े चित्र के दाएँ बाएँ ममता के छोटे चित्र भी थे। जगदीश को ऐसा लगा मानो बड़ा चित्र छोटे चित्रों को अपनी कुचेष्टा में अपने साथ मिला रहा हो, कोई भी चित्र दीवारों पर से अपना अधिकार नहीं छोड़ता, मानो यह दीवारें उन्हीं की सम्पत्ति हों।

आज जगदीश ने आगे बढ़ कर बड़े चित्र को उतार लिया, फिर उसके पास वाले चित्र को उतारा, फिर उसके पास वाले को। सब चित्र उतर गए। दीवार पर अब उनकी कोई छाप नहीं रह गई थी। वह उतर चुके थे। उनकी जगह दीवार वैसी की वैसी साफ़-सुथरी निकल आई। खाली कमरा भी पहले की अपेक्षा अधिक खुला खुला प्रतीत होने लगा। केवल कुछ छोटी बड़ी कीलें दीवारों में अड़ी रह गई थीं।

जगदीश ने सोचा, वह चौखटे खोल डाले, चित्र निकाल ले और फाड़ डाले। उसने एक चित्र उठाया, उसे सीधा कर के देखा, फिर फट-पट उसे उलटा कर दिया। पीछे की ओर का कागज़ फाड़ा, चौखटे में लगी हुई छोटी-छोटी कीलों को उखाड़ने की चेष्टा की। शायद जगदीश की उँगली में कील की टोपी चुभ गई, या कीलें बहुत पक्की लगी हुई

थीं, या फिर जगदीश ने पूरा जोर नहीं लगाया था, एक कील भी न उखड़ी। जगदीश ने सब चित्रों को उलटा कर के बड़ी अलमारी के सब से नीचे के खाने में रख दिया।

फिर जगदीश को ध्यान आया, रंजू अब बोलना सीख रही है। उसने पहला शब्द “माँ माँ” सीखा है। अभी तो वह तोते की भाँति बोल रही है, परन्तु जब ज़रा बड़ी हो कर मुँह से इस शब्द का अर्थ पूछेगी, तो मैं क्या उत्तर दूँगा ?

×

×

×

: ५ :

ममता ने एक गवर्नमेन्ट स्कूल में नौकरी कर ली थी। स्कूल के स्टाफ़-कार्टरों में उसने एक कमरा ले लिया था। स्कूल के कार्टर में वह रहती, स्कूल के होस्टल में वह खाना खाती, स्कूल के क्लास-रूम में वह बच्चों को पढ़ाती, और स्कूल की ही लाइब्रेरी में वह स्वयं पढ़ लिया करती थी। डाई अक्षरों के ‘स्कूल’ शब्द ने उसे पूर्णतया अपना बना लिया था।

अपने कमरे में चारपाई पर सिरहाने की ओर दीवार पर सहारा लगाए वह आधी-बैठी आधी-लेटी हुई-सी पड़ी थी। कमरे की खुली हुई खिड़की में से चन्द्रमा की चाँदनी कमरे के आधे प्रकाश तक फैली हुई थी। ममता ने बिजली बुझा रखी थी।

हल्के नील से पुती हुई कमरे की दीवारें बड़ी भली लग रही थीं। ममता उन दीवारों की ओर एकटक देखती रही, देखती ही रही। वह दीवारें और भली प्रतीत होने लगीं, इतनी भली मानो आँखों को स्पष्ट दिखाई देता हो कि चारों ओर निर्मल, शान्त, नीला जल बह रहा है—शान्त नद, शान्त समुद्र। ममता की खाट एक नाव की भाँति जलप्रवाह में धीरे-धीरे बह रही है और उस में ममता, अकेली, अपार जलराशि के दाएँ-बाएँ आगे-पीछे, जलराशि के वक्ष पर, ममता

शान्त, निश्चल बैठी हुई है, छोटी-छोटी लहरों में नितान्त निश्चल.....

जिस प्रकार अंधेर में आँखें अंधकार की अभ्यस्त हो जाती हैं और घोर अंधकार में भी धीरे-धीरे कुछ वस्तुएँ परिचित-सी जान पड़ती हैं, ममता को लगा मानो अपार जलराशि के परे, दूसरे छोर पर, कुछ मानव आकृति की मूर्तियाँ-सी हिल रही हैं जिनके मुख स्पष्टतया दिखाई नहीं देते, परन्तु उनकी ऊँचाई और गठन तथा हाव भाव से वह जानी पहिचाना प्रतीत होती हैं। अंधकार कम होता गया, धुँधली आकृतियाँ पहचान में आने लगीं। ममता ने देखा वह मुख देव का है।

देव का मुख सदा की भांति निर्मल दीख पड़ रहा था। लम्बे शरीर पर उसी प्रकार वह मुख दीप्तिमान था। शरीर से आज भी उसी प्रकार शांति और स्थिरता का आभास होता था। अन्तर केवल इतना था कि विरह-यातना से पिघल कर उसके चेहरे की रेखाएँ और भी कोमल बन गई थीं। इसी कारण देव पहले की अपेक्षा कुछ दुबला प्रतीत होता था। ममता की जमी हुई दृष्टि उसके मुख पर टिकी रही। प्रेम की स्निग्धता उस समय भी देव के मुख पर ठीक उसी भांति प्रकट हो रही थी। वह स्निग्धता ममता की आँखों में उतरती गई, उसकी स्थिर आँखें हिल उठीं, जमे हुए स्रोत पिघल गए, देव के चरणों की ओर झुके रहे, गरम अश्रु आंगो से ढलक चलें, ममता ने कहा “विदा ! मेरे देव, विदा ! जी चाहता है कि यह नाव ठहर जाए और मैं किनारे लग जाऊँ, तुम्हारे पास आ जाऊँ, परन्तु साहस नहीं होता। यह जलधार मुझे किनारे से ले आई है, लिए जा रही है। अब मेरी नाव में और किनारे में बड़ा अन्तर पड़ चुका है। विदा ! देव जी, विदा।”

देव की मूर्ति पीछे रह गई, ममता की नाव उसी जलधार के साथ बहती चली गई, किनारे शून्य में विलीन हो गए।

फिर एक मूर्ति दिखाई दी। ममता देखती रही। मूर्ति हिली, एक जीता-जागता मनुष्य बन गई। ममता ने पहचाना, वह जगदीश था।

ममता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। जगदीश के चौड़े माथे पर पीड़ा की पतली-सी रेखाएँ उभर आई थीं, होंठ पहले को अपेक्षा कुछ सफेद पड़ गए थे। जगदीश ने आँखें फैला कर ममता की ओर देखा, उसकी आँखों से प्रेम प्रकट होता था, और उल्लाहना, और सहानुभूति, और इन सब से अधिक उसकी आँखों से प्रकट होती थी, अन्तर्वेदना की कसक। और इस कसक के ऊपर एक और छाया-सी थी, और वह छाया थी “एक माँग” की। ममता से देखा न गया। उसने आँखें झुका लीं। ममता के हृदय से निकला “मुझे क्षमा कर दो। मुझे क्षमा कर दो! मैं आपको क्या दे सकती हूँ। देख लीजिए मेरा आँचल खाली है, मेरे हाथ खाली हैं, मैं सब पूँजी लुटा चुकी हूँ। आप मोतियों के व्यापारी थे, परन्तु मैं कंगाल होकर आपके पास आई। टूटे-फूटे नकली मनके, सस्ती सीपियाँ, छोटी-छोटी कौड़ियाँ मैं आपके चरणों में अर्पण करते समय लजा गई, मेरी निर्धनता लजा गई, मैंने आपको बता दिया कि मेरे पास कुछ नहीं है, मैं खाली हूँ मुझे क्षमा कर दो...मुझे क्षमा कर दो.....” ममता ने मुख नीचा कर लिया, उसे लगा वह जगदीश के सामने अपने लज्जा-नत नेत्रों को नहीं उठा सकेगी। वह मुख नीचा किए रही।

नाव बहती गई, किनारे के वृक्ष-पौधे, किनारे के फूल-पत्ते, किनारे की कंकड़-मिट्टी, सब कुछ पीछे छूटते गए। जगदीश की मूर्ति भी अब पीछे रह गई थी। ममता ने सिर उठाया।

किनारे की भोगी हुई रेत पर एक बालक खड़ा हुआ था, अञ्जली भर लहू और मुट्ठी भर मिट्टी की बनी हुई वह एक लड़के की मूर्ति थी। वह ममता की ओर देख रहा था मानो एक नन्हा बालक किसी अपरिचित मुख को पहचानने की चेष्टा कर रहा हो। ममता काँप उठी, उसने सिर झुका लिया। नाव जल के प्रवाह में बहती गई। हल्के हिलोरों से ममता को कुछ ऊँघ-सी आ गई। पवन जल से टकरा रही थी, जल में से ऋमर ध्वनि उठ रही थी, मानो कोई सोया हुआ

करुण राग लहरों में से जाग रहा हो । ममता ऊँघते-ऊँघते चौंक पड़ी । किनारे से एक बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही थी ।

ममता ने देखा, एक छोटी-सी बालिका किनारे पर घुटलियों चल रही थी । न जाने उसे मिट्टी गीली लग रही थी या उसके शरीर में कुछ चुभ गया था वह रोती हुई घुटलियों चलने की चेष्टा कर रही थी । ममता डर गई, बालिका लुढ़कते-लुढ़कते कहीं जल में न गिर जाय । ममता ने घबरा कर दोनों बाहें आगे की ओर फैला दीं, ताकि उस बालिका को थाम ले, उसे उठा ले, उसे चुप करा दे, झाड़पाँछ कर उसे गोद में ले ले । ममता की बाहें बाहर को फैली की फैली रह गईं । किनारा बहुत दूर था, बालिका बहुत दूर थी, जल का वृत्त विशाल था, नाव आगे को बही जा रही थी, बालिका प्रतिपल पीछे छूटती जा रही थी ।

आँखें देखती रहीं, पीछे मुड़-मुड़ कर ताकती रहीं । मन्द आकार भी मिट रहा था, आँखें विवश होकर रह गईं । जल की धारा उसी प्रकार प्रतवाहित थी । नाव की गति में कोई अन्तर नहीं आया था । ममता को विवश हो कर सामने की ओर ही देखना पड़ा । वह देखती रही । दूर किनारे पर कुछ परछाइयाँ-सी दृष्टि-गोचर हुईं ।

ममता की माता, ममता के पिता, ममता का बड़ा भाई, ममता की बड़ी बहिन—घुटनों के बल झुके हुए थे । उनके सिर के ऊपर कुछ परछाइयाँ-सी लटकती हुई दिखाई दे रही थीं । चेष्टा करने पर भी वह परछाइयाँ पहचान में न आती थीं । ममता ने बड़े ध्यान से देखा और अनुमान लगाया, शायद यह उसकी माता की माता थीं, यह उसके पिता के पिता थे, और अन्य परछाइयाँ शायद यह उसके भी पूर्वजों की थीं । वर्षों के, शताब्दियों के संस्कारों के कारण उनके मुख पर खरोंचें पड़ी हुई थीं । उन सब के मुख रुआंसे हो रहे थे, रो रहे

थे, झुके हुए थे, लज्जा-नत थे। ममता ने एक बार उन सब को देखा, फिर मुख फेर लिया।

किनारे की ओर से गले में रुकी हुई और अश्रुओं से भीगी हुई सी कुछ आवाज़ें आईं। “हमें क्षमा कर दे बेटी ! हमें क्षमा कर दे, बहिन ! हम दोषी हैं, हम घातक हैं।”

आवाज़ें उनके गले में रुक गईं; उनके आँसुओं में अटक गईं। ममता सिर से पैर तक निढाल हो गई। दाएँ हाथ से उसने अपने माथे को थाम लिया। एक दीर्घ निःश्वास स्वतः ममता के मुँह से निकल गया। फिर उसने धीरे से किन्तु स्पष्ट आवाज़ में कहा—“भगवान आपको क्षमा करें।”

नाव उसी प्रकार चलती रही। कितना ही समय बीत गया। ममता ने सिर उठा कर किनारे की ओर नहीं देखा। न जाने किनारे पर नए बौर से लदे हुए वृक्ष थे अथवा सूखे हुए झाड़-झंखाड़। निस्तब्धता अत्यन्त भयानक थी, मानो सुनसान घाटी में शून्यता के अतिरिक्त और कुछ न हो। मीलों तक फैली हुई शून्यता, सब कुछ जमा हुआ, सब कुछ बर्क, जिसमें कोई जीव-जन्तु न हो, कोई पशु-पक्षी न हो, पक्षी भी मानो बर्क में जम गए हों, बर्क के बने हुए खिलौनों की भांति शायद कहीं पड़े हुए हों। परन्तु कोई आवाज़ नहीं, जीवन का कोई चिह्न नहीं।

फिर किनारे से एक जनरव-सा उठता हुआ प्रतीत हुआ। लगता था मानो कोई शहर अथवा गुनजान घाटी नाव के रास्ते में आ गई है। बालकों का रुदन, बालकों का हास्य, युवकों का संलाप, वृद्धों के तर्क, स्त्रियाँ, पुरुष, आहें, नारे—सब प्रकार की आवाज़ों का एक समूह जिससे ममता के कान फटे जा रहे थे। ममता ने सिर उठा कर इधर-उधर नहीं देखा, वरन् अपने कानों में उँगलियाँ डाल लीं। कोलाहल बहुत दूर जान पड़ने लगा ! ममता ने थक कर अपना सिर अपने घुटनों पर रख लिया। नाव जल की धारा के साथ बहती रही। घुटी

हुई, सिकुड़ी हुई, एक गठडी-सी बनी हुई ममता नाव में बैठी रही ।
नींद ने आकर समस्त चेतनाओं को समेट लिया ।

तरल जल सख्त होना आरम्भ हो गया, जमते-जमते मिट्टी बन गया, ईंटें बन गया, दीवारें बन गया, लडकी की नाव, लकड़ी की खाट बन गई । स्कूल के स्टाफ क्वार्टरों में अपने कमरे में ममता सो गई थी ।

×

×

×

दो

: १ :

कहते हैं कृष्णलाल के सम्पन्न घराने में बारह बरस के बाद पुत्र का जन्म हुआ। उसके भूले में माँ ने चाँदी की डोर लगवाई। आज जब शाम को कृष्णलाल घर आया तो सरला बच्चे को चाँदी की बनी हुई दूध की बोतल में दूध पिला रही थी। देखते ही कृष्णलाल हँस पड़ा।

“सरला ! तुमने बोतल तो चाँदी की बनवा ली किन्तु यह नहीं सोचा कि दूध का अन्दाज़ा किस तरह लगेगा। शीशे की बोतल में तो दिखाई देता रहता है कि कितना दूध पी लिया गया और कितना बाकी है।”

“नहीं, जी, शीशे की बोतल में दूर से ही सफ़ेद-सफ़ेद दूध दिखाई देता है, और फिर यह आण-गण का घर हुआ, दूध को नज़र लग जाती है।”

“शीशे की बोतल में तो झट पता चल जाता है कि बोतल पूरी तरह साफ़ हुई है या नहीं, किन्तु यदि यह चाँदी की बोतल भीतर से चिकनी रह जाए तो ठीक तरह से पता नहीं चल सकेगा। जानती हो, डाक्टर कहता था कि बोतल के निपल का विशेष ध्यान रखना चाहिए, ऐसा न हो कहीं दूध लगा रह जाए।”

“मैं इतनी अनजान नहीं हूँ। नौकर पर भी विश्वास नहीं करती,

अपने सामने आया से बोतल साफ़ करवाती हूँ । दूध देने के बाद हर बार बोतल गरम पानी में उवाली जाती है ।”

“पुं ! इतना दूध छोड़ दिया, बहुत थोड़ा दूध पीता है ।” कृष्ण लाल ने बच्चे को उठा लिया । सरला ने बोतल में बचे हुए दूध को गिलास में डालकर देखा, बच्चे ने आधी बोतल से अधिक दूध नहीं पिया था । सरला के मुख पर चिन्ता छा गई ।

“एक बोतल में नौ आउन्स दूध आता है, कम-से-कम एक बोतल तो पीनी ही चाहिए ।” पास खड़े कृष्णलाल ने कहा । सरला की चिन्ता और भी बढ़ गई ।

“इतना बड़ा होने को आया, इसके साथ के बालक तो एक साँस में पी जाते हैं ।”

इतने में ही उनका डाक्टर आ गया । वास्तव में उन्होंने बच्चे को पहले महीने से ही अपने फ़ैमिली डाक्टर की देखरेख में रखा था । बच्चा बीमार हो चाहे न हो, डाक्टर स्वयम् ही तीसरे-चौथे दिन आ कर देख जाता था । ४० रु० मासिक डाक्टर का बँधा हुआ था । डाक्टर आते ही हँस कर बोला—“हेलो, छोटे बाबू !” और उसने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया ।

“डाक्टर साहिब ! यह देखिए अपने छोटे बाबू की करतूत । शकल से आधी बोतल दूध पिया है ।” सरला ने उलाहना डाक्टर पर धरना चाहा ।

“क्या बात है, दोस्त !” डाक्टर ने हँसकर बच्चे से कहा ।

“नैनै !” बच्चा दूध की बोतल की ओर देख कर बड़े चाव से बोला ।

“यह देखिए ! यह दूध माँग रहा है, और आप हैं कि देती ही नहीं” डाक्टर हँसने लगा ।

“झूठमूठ दंगा करता है, पीता तो है ही नहीं” सरला भी हँस दी

“परसों से यह “नैनै” कहने लगा है । सरला, तुमने यह रिकार्ड-बुक

में लिखा या नहीं ?” कृष्णलाल ने कहा, और फिर बच्चे को अपनी गोद में लेकर कहने लगा “क्या नैनै ?” कृष्णलाल का जी चाहता था कि बच्चा अपने मुँह से कुछ माँगे तो वह उसकी माँग पर बहुत कुछ न्योछावर कर दे ।

“जानते हो कल शाम जब मैं इसे सैर कराने ले गयी तो यह लाल रंग के गुब्बारों को देखता रहा । गाड़ी में से गरदन मोड़-मोड़ कर उन्हें देखता जाता था । सड़क की लाल बत्ती की ओर बार-बार झाँक-झाँक कर कहता था “नैनै....नैनै” । मैं कितनी ही देर गाड़ी रोक कर इसे बत्ती दिखाती रही, वह भला कैसे इस के हाथ लगती । यह कब कहेगा, मैं गाड़ी लूँगा.....” सरला कलना में डूब गई और उसे ध्यान न रहा कि डाक्टर पास ही खड़ा हुआ है ।

“फिर आप ही कहा करेंगी कि अभी कल ही तो नया खिलौना लाकर दिया था, आज तोड़ भी डाला ।” डाक्टर ने हँस कर कहा ।

“मैंने कहा, सच, इसकी रिकार्ड-बुक में लिख देना कि इसकी पहली पसन्द का रंग ‘लाल’ है ।” पास से कृष्णलाल बोला ।

“मैंने मनौती मनाई है.....” सरला अपने ध्यान में मग्न कहती रही ।

“बहुत-सी माँ तो मनौती भी मनाती हैं कि जब उनका बच्चा पहली बार किसी से लड़-झगड़ कर उलाहना लेकर घर आएगा तो वे पाँच रुपए का प्रसाद चढ़ाएँगी ।” डाक्टर ने हँस कर कहा । कृष्णलाल भी हँस पड़ा, सरला भी हँस पड़ी ।

“डाक्टर साहिब ! आप माँ के हृदय को नहीं समझ सकते । वह सोचती है, शुक्र है आज बच्चा हुआ तो किसी ने उलाहना भी दिया ।” सरला ने सरलतापूर्वक कहा, और बच्चे को इस प्रकार देखा मानो बच्चे के बिना वह कुछ भी न हो ।

“अब यहीं देख लीजिये । सरला की साड़ी पर कभी इतना-सा धब्बा भी नहीं लगने पाता था और अब....” कृष्णलाल हँसने लगा ।

“सबेरे आप की पतलून पर भी तो मिट्टी का इतना बड़ा धब्बा लगा दिया था।”

“बड़ा बन्दर हो गया है।” कृष्णलाल ने बच्चे के गाल पर धीरे से चुटकी भर ली।

“बंद...बंद” बच्चा कृष्ण लाल की ओर देख कर कहने की चेष्टा करने लगा।

“लीजिए, वह आप को भी बन्दर बना रहा है।” डाक्टर हँस पड़ा।

“बन्दर का पिता और क्या हो सकता है,” सरला खिलखिला कर हँस पड़ी। कृष्ण लाल भी हँस दिया। वह मन ही मन बहुत प्रसन्न था। क्या हुआ जो उसे बन्दर कहलवाना पड़ा, बच्चे का पिता तो वह बन ही गया है।

“अच्छा, डाक्टर साहब, ज़रा इसका पेट देखिए, कुछ सख्त मालूम होता है” सरला ने तनिक विलम्ब के बाद कहा।

डाक्टर ने बच्चे के पेट पर उँगलियाँ मार कर देखा, पपोटों को हटा कर आँखों की रंगत देखा, उँगलियों के छोंटे छोंटे नाखूनों पर दृष्टि डाली, बच्चे को सीधा, करवट से और उलटा लिटा कर भली भाँति देखा।

“कुछ नहीं, दाँत निकाल रहा है” डाक्टर ने कहा और उँगली से बच्चे के ऊपर के होंठ को हटा कर फूले हुए मसूड़े को देखने लगा।

“चने चबाएगा ना, दाँतो की जल्दी पड़ गई है।” सरला हँस दी

“यह देखिए दाढ़ भी निकाल रहा है, सफ़ेद नोक सी दिखाई दे रही है” डाक्टर ने कहा।

“यह ऊपर वाली चौथी दाढ़ है न?” सरला ने डाक्टर से पूछा।

“सरला ! यह भी रिकार्ड-बुक में नोट कर लेना” कृष्णलाल ने पास से कहा।

“इतना बड़ा हो गया है किन्तु अभी ठीक से चलता ही नहीं?” सरला ने डाक्टर से प्रश्न किया।

“कोई बात नहीं, कई बच्चे ज़रा देर से चलना सीखते हैं। आप चिन्तित रहा करती थीं कि घुटलियों कब चलेगा, तो देखिए घुटलियों भी चलने लगा। फिर आप चिन्तित रहा करती थीं कि यह थोड़ा-थोड़ा कब चलने लगेगा, तो अब यह थोड़ा-थोड़ा चल भी लेता है।” डाक्टर ने कहा।

“कल मैंने इसे बाहर की ड्योढ़ी के पास से पकड़ा। ज्यों-ज्यों मैं इसे पकड़ने की चेष्टा करती थी, यह और तेज़ चलने की कोशिश करता था, मानो मैं इसे पकड़ ही नहीं सकती, शैतान कहीं का.....” सरला ने बच्चे की पीठ पर धीरे से थपकी दी। बच्चे को शायद अपने बारे में कही गई बात बुरी लगी, वह रोने लगा।

“हाय, हाय, मैंने मारा थोड़े ही है। पाल किया था। गुच्छे हो गया, ऐं?” सरला बच्चे को प्यार करने लगी।

“इसकी टाँगों पर रोज़ मालिश करनी चाहिए,” डाक्टर ने कहा।

“मैं तो रोज़ मालिश करके आधे घंटे धूप में छोड़ देती हूँ, तब जाकर नहलाती हूँ।” सरला ने बताया।

“बस ठीक है। कैल्शियम बराबर दे रही हैं न?”

“रोज़ देती हूँ, कैल्शियम भी और वह बूँदों वाली दवाई थी।”

“हाँ, वह विटामिन ‘बी’ है। दाँतों के लिए बहुत अच्छी है। कभी बच्चा कम दूध पिये तो चिन्ता न किया कीजिए। ऐसी दशा में मेढ़ा प्रायः कमज़ोर हो जाता है। पूरी भूख नहीं लगती। यदि बच्चा पेट भर खा पी भी ले तो और तरह से कष्ट उठाता है। थोड़े दिनों की बात और है, जहाँ ज़रा और अच्छी तरह चलने लगा कि बाकी दाँत आसानी से निकाल लेगा।” डाक्टर ने कहा, और चलने की आज्ञा माँगी। सरला चाय आदि के लिए कहती रही, पर डाक्टर चला गया। आया आई और बच्चे को खिलाने के लिए ले गई।

“देव को आये दो-तीन दिन हो गए हैं। भगवान करे वह सकुशल हो।” डाक्टर के जाने के पश्चात् कृष्णलाल ने चिन्तापूर्ण स्वर में कहा। देवराज आयु में कृष्णलाल से काफ़ी छोटा था किन्तु कृष्णलाल का अत्यन्त प्रिय मित्र था। कभी-कभी सरला हँसकर कहा करती थी कि कितना अच्छा होता यदि दोनों मित्रों में से एक लड़की होता और दूसरा लड़का, दोनों हर समय साथ रह सकते।

“कहीं बैठा कविता कर रहा होगा” सरला ने कहा।

“या किसी रोगी की चीर-फाड़।” कृष्णलाल ने कहा।

“बहुत ही बढ़िया आदमी है।” सरला ने सहज स्वभाव से कहा।

“तो क्या मुझसे भी बढ़िया आदमी है?” कृष्णलाल ने हँसकर पूछा।

“हम मनुष्य हैं, वह देवता है” सरला थे बड़ी चतुरता से ‘हम’ शब्द कहकर अपने आपको कृष्णलाल के साथ मिला दिया।

“तब तो मुझे उससे ईर्ष्या होनी चाहिए। मेरी पत्नी को वह मुझ से भी अच्छा लगता है।” कृष्णलाल ने हँसते हुए कहा।

“क्यों? क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं या उस पर विश्वास नहीं?” हम बार सरला तनिक क्रोधपूर्वक बोली।

“विश्वास है, बाधा, दोनों पर विश्वास है, तुमपर उससे अधिक, उसपर तुमसे अधिक।” कृष्णलाल ने उँगली से सरला के गाल को छुआ।

“भाभी! भाभी!” बाहर से देव की आवाज़ सुन पड़ी।

“आप आ गए, देव जी! हम लोग आप ही की प्रतीक्षा कर रहे थे।” स्नेहपूर्वक सरला ने प्रसन्नता दर्शाते हुए कहा।

“सदा भाभी का ही पुकारते आते हो, कभी भाई को भी याद कर लिया करो।” कृष्णलाल हँसने लगा।

“भाई, घर में भाभी का राज है। तुम्हारे दफ़्तर में तुम्हारा राज

है। वहाँ आऊँ तो मजाल नहीं जो कभी भाभी को आवाज़ दूँ।” देव दोनों के बीच में आकर खड़ा हो गया।

“किन्तु आज भैया को यह लघुता का अनुभव क्यों हो रहा है? मेरे लिए तो भाई और भाभी दोनों एक ही वस्तु के नाम हैं।” देव ने तनिक ठहर कर कहा।

“जानते हो, आज हमारी बहस हो गई” सरला ने कृष्णलाल को छेड़ते हुए कहा।

“लो भई, तुम्हारी भाभी कहती हैं कि आपसे देव अच्छा है तो अब मुझे लघुता का आभास न हो तो क्या हो” कृष्णलाल ने मुस्करा कर कहा।

“मैंने यह तो नहीं कहा कि आपसे अच्छे हैं, मैंने तो यह कहा था कि मैं आप मनुष्य हूँ, देव-देवता हूँ” सरला ने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा।

“काश, भाभी, मैं देवता न होता, आप लोगों की तरह हँस सकता, रो सकता.....” देव सामने दीवार पर लगे हुए कृष्णलाल के लड़के के चित्र को देखने लगा।

“देव भाई! यह भी तो देवता की कृपा है, नहीं तो हम बिचारे हूँ कौन!” सरला भी अपने पुत्र के चित्र की ओर देखती रही।

“नहीं, नहीं, भाभी! ऐसा न कहिये। कुछ और बात कीजिए।” देव ने कहा।

“हाँ, सच, और बात.....सरला कह रही थी कि देव आकाश से किसी कविता को उतार रहा होगा, इसीलिए नहीं आ सका.....” कृष्णलाल आगे कुछ और भी कहने वाला था कि देव बोल उठा, “मैं तो धरती पर से भी किसी को अपने पास नहीं ला सकता, आकाश से मैं कैसे ले आऊँगा?”

“और मैं कह रहा था कि देव किसी रोगी की चीर-फाड़ में लगा हुआ होगा” कृष्णलाल ने अपनी अधूरी बात को पूरा किया।

“अपने दिल की अवश्य चीर-फाड़ करते रहते हैं” सरला ने देव से ठठोली की।

“कितना अन्तर है एक डाक्टर में और एक कवि में, एक कल्पना की सुन्दर मूर्ति का पुजारी और दूसरा संसार की कुरूपता का दर्शक। संसार को समस्त रोग-व्याधियाँ डाक्टर के सम्मुख आती हैं। सच बताना, देव ! इतने घाव धो-धो कर और रोग देखकर कल्पना की मूर्ति टूट नहीं जाती क्या ?” कृष्णलाल ने देव की बाँह पकड़ कर उसे अपने पास सोफ़े पर बिठा लिया। सरला निकट ही कुर्सी पर बैठी हुई थी।

“नहीं, मित्र ! एक ही मनुष्य में एक ही समय पर बहुत कुछ जीवित रहता है। क्या तुम्हारा यह विचार है कि जब डाक्टर रोगी के रोने चिल्लाने पर भी उस समय अपने सख्त हाथों से घाव को धोए जाता है, साफ़ करता है, तो उस समय उसके हृदय में दया की भावना नहीं होती ?” देव हँसा, फिर कहने लगा “और कविता केवल सुन्दर कल्पना से ही उत्पन्न नहीं होती। हृदय की अतृप्त अभिलाषाएँ जो कि घावों की भाँति ही भयानक होती हैं, समाज के बनाए हुए दैनिक व्यवहार के नियम जो कि क्षय रोग के कीटाणुओं की भाँति मनुष्य के रक्त में सुर-सुराते रहते हैं, कविता इनसे भी उत्पन्न होती है।”

“मनू, को बुलाऊँ ?” सरला ने पूछा। मनू उनके पुत्र का नाम था।

“हाँ, हाँ। ज़रा देव भी समाज के क्षय रोग से निकल कर हँसती हुई दुनिया में आ सके।” कृष्णलाल ने सरला को उत्तर दिया।

सरला ने आवाज दी। आया बच्चे को ले आई। बच्चे ने इस प्रतिदिन के अतिथि को एक पल में ही पहचान लिया, बाहें फैला कर देव के पास चला गया। देव उसकी उँगलियों, उसके तलवों और उसके पाँवों से खेलता रहा। बच्चा देव के कोट की बाहर की जेब में लगे पेन की ओर बार-बार झुका, उसे पकड़ कर निकालने की बहुत चेष्टा की,

किन्तु पेन के क्लिप को बाहर खींच लेने में वह असमर्थ रहा। फिर देव की ठोड़ी पकड़ कर बड़े प्यार से बोला “नै...नै” और फिर पेन की ओर देखने लगा।

“अच्छा, पेन लेगा ? लिखेगा ? मेरी तरह कविता लिखेगा ?” देव ने कोट में से पेन निकाल कर उसे दे दिया। बच्चा उससे खेलता रहा।

“बच्चे जीवन से केवल खेलते ही हैं, उसकी कविता नहीं करते।” कृष्णलाल ने हँस कर कहा।

“बच्चे केवल खेलते ही हैं, जवानी इनके खेल को कविता बना देती है।” देव बच्चे और पेन की ओर देखता रहा।

“तुमने तो कविता में बातें करना आरम्भ कर दिया। यह बातें नहीं अब तो कोई कविता सुना दो” कृष्णलाल ने कहा। सरला को भी देव की कविताएँ बहुत अच्छी लगती थीं। बच्चा देव की टाँगों पर बैठकर खेलता रहा। देव कविता सुनाने लगा जिसका भाव कुछ इस प्रकार था—
 “भोर से साँझ और साँझ से भोर हो जाती है, मुझे ऐसा लगता है मानो हर समय दो आँखें मेरी ओर देख रही हैं। जिस पथ पर मेरे पाँव जाते हैं, मुझे लगता है कोई दो आँखें मेरा पीछा कर रही हैं। मैं जब किसी फूल के मुख को देखता हूँ, दो आँखें उस फूल के मुख पर बैठ जाती हैं। फूल दिखाई नहीं देता, काँटा दिखाई नहीं देता, दिखाई देती हैं केवल दो आँखें। रात्रि का अन्धकार मुझे इन आँखों से नहीं छुड़ा सकता, दिन का प्रकाश मुझे इनसे अलग नहीं कर सकता। दो आँखें मेरे जीवन के आगे पृथ्वी बनकर बिछ जाती हैं, आकाश बन कर छा जाती हैं, पवन बन कर रोम रोम में बस जाती हैं।”

सरला और कृष्णलाल बड़ी देर तक देव की कविता में खोए रहे। देव कविता से भी आगे—न जाने कहाँ खोया रहा।

×

×

×

“मैंने कहा, आ गए क्या ?” एक दिन कमरे में बैठे हुए सरला ने बाहर से किसी के आने की आहट सुनकर कहा ।

“हाँ भाभी आ तो गया हूँ । परन्तु देव हूँ, कृष्ण नहीं ।” देव कमरे में आ गया । सरला हँस दी ।

“उपासक की दृष्टि का ही अन्तर होता है । उपासना तो वही एक वस्तु है, किसी देवता की न सही, कृष्ण की सही” देव ने कहा ।

“एक बेचारे उपासक का क्या मोल है फिर कृष्ण के उपासकों की तो गिनती ही नहीं, केवल गोपियाँ ही ३६० थीं” सरला हँसकर बोली

“नहीं भाभी ! यह बात नहीं । कभी कभी कोई अकेला उपासक एक बार में ही ३३ करोड़ देवताओं की आराधना कर लेता है । क्यों, ठीक है न ?” भाभी ने उपासकों का पक्ष लिया था, देव ने देवताओं की ओर से कहा ।

“होगे करोड़ों देवता और अनगिनत उपासक, आप ने हमारे देवता के लिए आया का प्रबन्ध किया या नहीं ?” सरला ने देव से पूछा ।

“भाभी, आपके देवता के लिए आया ? क्या कृष्ण के लिए अब आया रखनी है ?” देव हँसने लगा ।

“मनू के लिए तो रखनी है, वह भी तो मेरा देवता है ।”

“फिर तो हमारी एक भाभी के दो देवता हो गए, एक पति, एक पुत्र ।”

“एक देवर भी” सरला हँसने लगी, “केवल उपासना का अन्तर है, पति की उपासना और ढंग से करती हूँ, पुत्र की उपासना और ढंग से और देवर भइया की उपासना और ही ढंग से ।”

“मनू कहाँ है ?—देवता नम्बर २ ?”

“अभी रो-रो कर सोया है । आया बीमार थी, वह छुट्टी लेकर चली गई । यह उसके लिये हुड़कता है ।”

“हूँ !”

“कोई आया जल्दी से ढूँढ दीजिए न। परसों से उसकी सैर भी नहीं हुई।”

“मुझे रख लीजिए, भाभी ! आपके लड़के को खिला दिया करूँगा।”

“आप तो हँसी करते हैं.....” सरला इतना ही कह पाई थी कि नौकर ने आकर कहा कि वह एक आया ढूँढ लाया है। सरला ने उसे भीतर बुला लिया।

“क्यों भई, एक बच्चा है, अच्छी तरह खिला लोगी ?” सरला ने पूछा।

“बीबी, उमर पक गई इसी काम में, कैसे न खिला सकूँगी। काम देखकर खुश हो जाओगी।” आया अपेक्ष आयु की स्त्री थी। चालढाल और बात-चीत से सयानी जान पड़ती थी।

“पहले कहाँ काम करती थी ?” सरला ने पूछा।

“पहले मैं लाहौर में थी, उन राय साहब के यहाँ.....क्या नाम है उनके बेटे का.....जगदीशचन्द्र.....उनके यहाँ चार महीने काम किया। फिर मैं गाँव चली गई। अब तो बहुत दिनों के बाद आ रही हूँ।”

आया की इस बात पर देव चौंक उठा। सरला आया से बातें करती रही।

“उधर इतनी जल्दी काम क्यों छोड़ दिया ? और यहाँ दिल्ली कब से आई है ?”

“मैंने थोड़े ही छोड़ा था। वड़ लोग भी बिचारे बड़े अच्छे थे। जब मैंने छोड़ा, मुझे तो छोड़ते वक्त रुलाई आ रही थी।” आया का गला भर आया।

“तो फिर छोड़ा क्यों ?” इस बार देव ने जल्दी से प्रश्न किया।

“बस तक्रदीर ही समझ लो, बाबू ! मैंने तो सोचा था अब ज़िन्दगी यहीं कट जाएगी, लेकिन भाग में तो ठोकरें लिखी हैं। जब से उनके

घर लड़की हुई, उसकी माँ कुछ बीमार रहने लगी। बीमारी तो कोई ऐसी-वैसी नहीं थी, बस बैठे-बैठे डर जाती थी, कभी-कभी बेहोश भी हो जाती थी, कभी चिल्लाने लगती “मेरा बच्चा मत छीनो।” वह ठहरे अभीर लोग, डाक्टर ने कह दिया आया को बदल दो, बस उन्होंने मुझे जवाब दे दिया। एक चपटी नाक वाली और आया रख ली। क्यों, बाबू, क्या इससे रोग कट जाते हैं?” आया देव की ओर देखती रही, सोचती रही शायद अभी बाबू कहेंगे तेरी शक्ल तो बुरी नहीं जिससे डर लगता हो। किन्तु देव ने आया की ओर देखा तक नहीं। वह कुछ बोला भी नहीं, चुपचाप खिड़की की ओर मुँह किए बैठा रहा।

“यहाँ दिल्ली में मेरी बहिन रहती है, मामा की लड़की, उन्हीं के यहाँ आई थी। लाहौर जाने को अब मन नहीं करता। जहाँ काम करेंगे वहीं दो रोटी खा लेंगे।” आया ने ऐसे कहा मानो अपने आप से बातें कर रही हो।

“अच्छा तनखाह क्या होगी?” सरला ने आया से पूछा। थोड़ी देर की बातचीत के बाद फैसला हो गया। सरला ने आया को नौकर रख लिया।

इतने में कृष्ण भी आ गया। तीनों बैठ कर चाय पीने लगे। देव को उदासीनता का अनुभव कृष्ण और सरला दोनों को हो रहा था। कृष्ण ने कितनी ही बातें पूछीं, किन्तु देव कुछ भी उत्तर न दे सका।

जब देव जाने लगा, उस समय आया मनु को बाहर के बगीचे में खिला रही थी। देव उसके पास से होकर बाहर न जा सका। बगीचे में मनु के साथ खेलने लगा। नई फुलवारी के फूलों में से लाल रंग के फूल तोड़कर वह मनु के बालों में लगाता रहा, क्रीड़ा में लगाता रहा। मनु देव से बहुत हिला हुआ था, हँसता रहा। अब मनु भली-भांति दौड़ लेता था। वह छोटी बाड़ के पीछे छिपता रहा और देव को ढूँढ़ता रहा। आया भी हँसती रही।

“जहाँ तुम पहले काम करती थीं, उस बच्ची का क्या नाम था।?”
देव ने कुछ देर के बाद आया से पूछा।

“उसे रंजू कहकर पुकारते थे” आया ने कहा।

“रंजू ?.....रंजू ?.....” देव एकाएकी चौंक पड़ा।

“बड़ी प्यारी बच्ची थी, बानू ! अपनी माँ की तरह सुन्दर थी।
अब तो कुछ बड़ी हो गई होगी।” इस नेक आया को शायद सचमुच
ही वह बच्ची प्यारी लगती थी। देव का हाथ कुछ काँप-सा गया। वह
मनू को उठाए हुए था, वह गिरते-गिरते बचा।

×

×

×

: ३ :

आज मनू का जन्म-दिवस था। कृष्णलाल के घर में बड़ी चहल-
पहल थी। चारों ओर से बधाइयाँ आ रही थीं। इस आव-भगत में
सरला को साँस लेने का भी अवकाश न था। मनू को सफेद किनारी
लगी हुई सफेद रेशम की कमीज़ और वैसा ही पाजामा पहनाया हुआ
था। आया को भी आज लाल किनारे वाली महीन मलमल की नई
धोती मिली थी। मनू वैसे ही बड़ा सुन्दर था, किन्तु आज तो उसकी
सुन्दरता को मानो चार चाँद लग गए थे। पार्टी पर आमन्त्रित किए
गए अतिथि आते गए, और बैठते गए, और मनू पर उपहारों और
खिलौनों की मानो वर्षा होती रही। कृष्णलाल खिलौनों के नाम और
देने वालों के नाम भली-भाँति नोट करता जा रहा था, साथ-साथ सरला
की समझाता जा रहा था कि वह यह सब मनू की रिकार्ड-बुक में
ठीक से लिख ले। मनू आया से उँगली छुड़ाकर इधर-उधर खेलने
लगता था। सरला अतिथियों के स्वागत के कार्य से पल-भर के लिए
समय निकालकर भीतर चली जाती और खाने-पीने के प्रबन्ध का
निरीक्षण कर लेती थी। कृष्णलाल अतिथियों को लाने, उन्हें बिठाने

आदि में भीतर-बाहर आ-जा रहा था। मनु देव की उँगली पकड़े पाटी के लिए सजी हुई मेज़ों के इधर-उधर घूम रहा था।

“डाक्टर साहब, ब्याह करने के लिए जी चाहता हो या नहीं, किन्तु एक बालक की चाह ब्याह करने की प्रेरणा अवश्य देती है।” कृष्ण लाल के मित्रों में से एक ने हँस कर कहा। देव भी सुन कर हँस दिया।

“इतना सुन्दर बेटा खिलाने को क्या आप का जी नहीं करता?” उसी मित्र ने फिर कहा। देव फिर हँस दिया।

“खिला तो रहा है, मेरा है तो क्या, इसका हो तो क्या। क्यों हमारे देवता-स्वरूप देव को तंग करते हो?” कृष्णलाल बोल उठा। सब हँसने लगे।

वास्तव में देव इतना सुन्दर और उत्तम नवयुवक था कि जो कोई उसे देखता था अपनी पुत्री अथवा बहिन के लिए उसे उपयुक्त वर समझता था। किन्तु आज तक कोई भी देव को इस बन्धन में फँसाने में सफल नहीं हो सका था।

मनु के हाथ से उसका “जन्म-दिवस-केक” कटवाया गया। बधाइयों की बौछार होने लगी। सरला उन बधाइयों को अपनी प्यार की भूखी झोली में सँभालती गई। मनु का काटा हुआ केक सब ने प्रसाद की भाँति ग्रहण किया। और खाना-पीना भी चलता रहा। मनु भी देव की गोद में बैठा-बैठा केक खाता रहा। हँसते खेलते बधाइयाँ देने, अतिथि विदा हुए।

सरला, देव और कृष्ण तीनों बैठे मनु को खिलाते रहे। उपहास में आण खिलौनों में से सरला ने एक मोटर उठा कर मनु को दिखाई और कहा “नई मोटर दूँगी, कहो मनु अम्मी ता बेता ए।” मनु ने तुरन्त कहने की चेष्टा की “मनु अम्मी ता बेता ए।”

कृष्णलाल ने उन नए खिलौनों में से हवाई जहाज़ हाथ में उठा कर कहा “नहीं, मनु पिताजी ता बेता ए।”

मनू ने अभी मोटर ठीक से हाथ में थामी भी नहीं थी कि उसे छोड़ दिया, अपने पिता की ओर झुक कर कहने लगा “मनू पिता जी ता बेता ए ।”

तीनों हँस पड़े । जिसके हाथ में बढ़िया वस्तु होती, मनू उसी का बेटा बन जाता । परन्तु अभी तक न मोटर मिली थी, न हवाई जहाज़, न और कोई खिलौना । अभी तक वह यह निर्णय नहीं कर सका था कि वह किसका बेटा है । सरला कहती थी जब मनू कहेगा कि वह पिता जी का बेटा नहीं, अम्मी का बेटा है, तब उसे मोटर मिलेगी । कृष्ण कहता था कि मनू कहे कि वह अम्मी का बेटा नहीं, पिता जी का बेटा है, तब उसे खिलौना दूँगा । मनू खीज उठा, दौड़ कर देव के गले में बाँहें डाल दीं और कहने लगा “मनू चाचा जी ता बेता ए ।”

सब खिलखिला कर हँस पड़े ।

कुछ देर इसी प्रकार हँसते बोलते रहे तब देव घर जाने के लिए उठा ।

“अब कब आएंगे ?” सरला ने पूछा ।

“दूसरे तीसरे दिन तो यहाँ आता ही रहता हूँ । मेरे आने न आने की क्या बात है” देव ने हँस कर उत्तर दिया ।

“अब तो यहाँ बारी पर ही आते हैं न । कल भी मैं आप के बारे में इन से पूछ रही थी । इन्होंने बताया कि आज कल आप डाक्टर रविशंकर जी के यहाँ ज्यादा जाते हैं । तो अब तो आप हम से हमारी बारी पर ही मिलने आ सकते हैं न ।” यह कह कर सरला हँस दी ।

“नहीं, भाभी, आप जानती हैं । डाक्टर रवि शंकर ही मुझे लाहौर से दिल्ली लाए थे । उनकी मुझ पर सदा कृपा रही है । बुजुर्ग आदमी हैं । शाम को हस्पताल से छुट्टी पाते ही अपने साथ गाड़ी में बिठा लेते हैं, जाना ही पड़ता है ।” देव ने कहा ।

“इसलिए तो मैं कहती हूँ.....”

“नहीं, मैं तो स्वयं उधर कम जाना चाहता हूँ, पर.....” देव रुक गया ।

“क्यों, वहाँ जाने में कोई ख़तरा है क्या ?” भाभी ने हँस कर पूछा ।

“मुझे तो क्या ख़तरा हो सकता है,” देव हँस पड़ा, फिर कहने लगा—“कहीं किसी और को ख़तरा न हो ।”

कृष्णलाल भी हँस पड़ा । सरला की समझ में कुछ न आया ।

“भई, डाक्टर रविशंकर जी की कृपादृष्टि आजकल विशेष रूप से देव जी पर है ! तुम तो कुछ समझती ही नहीं ।” कृष्णलाल ने सरला से कहा ।

“कृपादृष्टियाँ प्रायः आपत्तिजनक भी होती हैं भगवान् भली करें । डाक्टर रविशंकर जी के कोई जवान लड़की तो नहीं ?” सरला हँसने लगी ।

“अब मतलब आया समझ में” कृष्णलाल ने हँसकर कहा ।

“अच्छा है, हमारी देवरानी आपुगी” सरला ने हँसी को रोकते हुए कहा ।

“यही तो मुशिकल है । भगवान जब मेरे हाथ पर भाग्य की रेखाएँ खींच रहा था तब स्त्री की लकीर खींचते समय उसके कलम की स्याही समाप्त हो गई थी ।” देव खिलखिला कर हँसने लगा ।

×

×

×

: ४ :

डाक्टर रवि शंकर की पुत्री राजकुमारी सुन्दर थी । उसकी असाधारण सुन्दरता थी । ललित कलाओं में उसकी अभिरुचि थी । चित्रकला में उसने शिक्षा प्राप्त की थी और संगीत काभी उसे कुछ-कुछ ज्ञान था । उसके पिता धनवान थे, इसी कारण उसका कोमल स्वभाव और उसकी सरस रुचियाँ भली-भाँति विकसित हो पाई

थीं। कुमारी डाक्टर देव को बड़ी ही अच्छी दृष्टि से देखती थी, इस बात का कुमारी के पिता को ज्ञान था। डाक्टर देव जैसा चरित्रवान युवक कोई बिरला ही होगा, यह बात भी कुमारी के पिता जानते थे। उनके हृदय में डाक्टर देव के प्रति श्रद्धा थी और अपनी पुत्री पर उन्हें गर्व था। कुमारी की एक ही बड़ी बहिन थी, उसका विवाह हो चुका था। घर में कुमारी एकाकीपन का अनुभव करती थी। इसीलिए डाक्टर देव का साथ कुमारी तथा उसके पिता के लिए अत्यन्त आवश्यक बन गया था।

डाक्टर देव कदाचित् ही अपने घर खाना खा पाता। वह प्रायः कुमारी की मेज़ का ही अतिथि बना रहता। कुमारी के पिता डाक्टर रविशंकर का ऐसे तो अपना अस्पताल था, किन्तु वह स्वयं गंठिया के रोगी थे। उनके घुटनों के जोड़ों में प्रायः पीड़ा रहती थी। देव भी डाक्टर था; अस्पताल में और भी कितने ही डाक्टर थे, किन्तु कुमारी के पिता के घुटनों के जोड़ इतने खोखले हो चुके थे कि उन्हें बहुधा अपने कोठी के बरामदे, बगीचे या कमरे में आराम कुर्सी पर बैठे रहना पड़ता था। इसलिए डाक्टर देव के विचार, डाक्टर देव का संसर्ग, डाक्टर देव की कविता, कुमारी के पिता के लिए कुमारी से भी अधिक आवश्यक थी। कुमारी की कोमल और साधारण से उच्च रुचियाँ सहेलियों की सभा से भी उकता जाती थीं, दिन-रान के पुस्तकावलोकन से भी थक जाती थीं, इसलिए डाक्टर देव की आवश्यकता कुमारी के पिता की अपेक्षा कुमारी को अधिक थी।

आज कुमारी ने मेज़ पर चाय लगवा रखी थी। कुमारी और उसके पिता दोनों पाम-पास बैठे हुए थे। गरम चाय का धुँआँ प्यालों में से बल खाता हुआ निकल रहा था। अंडों वाले मीठे टोस्ट कुमारी के पिता को बहुत अच्छे लगते थे, वह भी मेज़ पर थे। परन्तु दोनों को लग रहा था कि कोई वस्तु वहाँ नहीं है, और इस 'कोई वस्तु' के सम्बन्ध में उन दोनों में से किसी के मन में भी ग़लत धारणा नहीं थी।

दोनों जानते थे कि वह 'कोई वस्तु' डाक्टर देव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मीठी और गरम चाय का फ्रीकापन और ठंडापन बहुत देर तक न रहा। डाक्टर देव आ गया। कुमारी हँस दी, कुमारी के पिता हँस दिये, कमरा सुशोभित हो गया, मेज़ भी खिल उठी। तीनों हँसते रहे, चाय पीते रहे। फिर देव आज के एक खतरनाक केस को बातें करता रहा, कैसे उसने एक नवयुवक का आपरेशन किया, उसको प्लूरिसी थी, उसकी नवविवाहिता पत्नी रो रही थी मानो इसके जीवन का आपरेशन हो रहा हो। डाक्टर देव ने कहा कि निर्धन और साधारण वर्ग के घरों में बिचारी स्त्री का जीवन पति की हँसी के साथ हँसता है, पति के रोने के साथ रो उठता है, पति के बीमार हो जाने पर बीमार हो जाता है, और पति का मृत्यु के साथ मर जाता है।

“क्या आपका यह विचार है कि साधारण से उच्च स्थिति के घरों में स्त्री का प्रेम प्रेम नहीं होता ? नारी का हृदय सदा नारी का हृदय है। वह सदा अपने प्रियतम के जीवन के साथ जीवित रहता है, प्रियतम की मृत्यु के साथ मर जाता है।” कुमारी तर्क करने लगी।

“ठीक है। किन्तु मैं तो यह कह रहा हूँ कि अमीरी और घर के काम काज को छोड़ जीवन के अन्य कार्यों में रुचि काफ़ी हद तक मनोरंजन का साधन बन जाती है। किन्तु साधारण स्त्री के लिए पति के अतिरिक्त और कोई मनोरंजन का साधन नहीं होता।” देव ने कहा।

“घुन खाए हुए दाने की भांति उस स्त्री के हँसते रहने और सोसाइटी में आते-जाते रहने से उसकी वेदना का मूल्य कम नहीं हो जाता।” कुमारी उसी प्रकार तर्क करते हुए बोली।

फिर सब सोचते रहे, प्लूरिसी का रोग प्रच्छन्न रहता है, फिर उभर आता है। ऐसे और भी कितने ही भयानक रोग हैं। मनुष्य का

जीवन रोगों से, निर्धनता से, तथा अन्य अगणित यातनाओं से घिरा बंधा रींगता रहता है ।

कुमारी के पिता प्रायः शाम की चाय के बाद थोड़ा-बहुत पढ़ा करते थे । उसके बाद अपने बाग़ में टहला करते थे । अब उनके अध्ययन का समय हो गया था । कुमारी और डाक्टर देव दोनों कुमारी के कमरे में चले गये । कुमारी एक गीत सुनाएगी या डाक्टर एक कविता, दोनों इस सम्बन्ध में वाद-विवाद करते रहे । अन्त में समझौता यह हुआ कि पहले डाक्टर देव अपनी एक कविता सुनाएगा, फिर उसी कविता को कुमारी गाएगी । देव ने अपना नया गीत सुनाया, जो कुछ इस प्रकार था—चाँद और तारों भरी रात है, आओ, हमें मिल जाओ । सरसों में नए फूल आ गए हैं, किन्तु प्रीति छली गई है, आँखों में आँसू भरे हैं, आओ, हमें मिल जाओ । ऋतु बदल चुकी है, किन्तु मेरे आषाढ़ तो उसी प्रकार सूने हैं, मेरे पौष तो उसी प्रकार उदास हैं, आओ, हमें मिल जाओ । वह भी समय था जब तुम मेरी थीं, मैं तुम्हारा था, किन्तु अब वह दिन कहाँ हैं ? आज चाँद और तारों भरी रात है, आओ, हमें मिल जाओ ।

जब डाक्टर देव ने अपनी कविता समाप्त की तो कुमारी ने उसी कविता को गाना आरम्भ कर दिया । कुमारी तानपुरे के तारों को धीरे-धीरे छेड़ रही थी । उसके कंठ से तिलङ्ग के स्वर जाग्रत हो रहे थे ।

कुमारी गाती रही । डाक्टर देव कुछ घबरा-सा गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह गीत जो उसने कदाचित् किसी और को लक्ष्य कर लिखा था कुमारी स्वयं उसी को लक्ष्य कर गा रही थी ।

कुमारी रूपवान थी और देखने में बड़ी प्यारी लगती थी । कुमारी उसे प्रेम करती थी, पर देव ने सोचा, उसके हाथों में बल नहीं है कि वह कुमारी के हाथों को थाम सके, उसके पाँवों में शक्ति नहीं है कि वह कुमारी के साथ-साथ चल सके । उसे कोई अधिकार नहीं है कि वह कुमारी को उस पथ पर डाल दे जिस पर वह स्वयं न चल सकता हो । किन्तु वह कुमारी को कैसे सावधान करे ।

देव ने सोचा, दुःख तो संसार में हर स्थान पर बिखरे पड़े हैं, रोग इस शहर की भांति और शहरों में भी हैं, क्यों न वह कहीं और जाकर डाक्टरी कर ले। परन्तु कुमारी के पिता जिनकी स्नेह-सिक्त कृपा-दृष्टि के नीचे वह दब रहा था, क्या सोचेंगे? फिर, कृष्णलाल, जिसके अतिरिक्त उसका और कोई मित्र नहीं था, सरला जो माता समान भाभी थी, बहिन समान सहचरी थी, मनु..... उसकी बालक्रीड़ाओं को वह कैसे आँखों से ओझल कर सकता था?

देव को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके पाँव धरती में धँसते चले जा रहे हों।

×

×

×

: ५ :

दूसरे दिन राजकुमारी ने देव को चाय पर बुलाया था। देव ने जाकर देखा, राजकुमारी की दो-तीन सहेलियाँ, कुमारी के पिता के एक-दो समवयस्क मित्र, परस्पर वार्तालाप में संलग्न थे। कमरे में खूब रौनक थी। कुमारी के पिता ने स्नेहपूर्वक देव को अपने पास बिठाया। इन सभी ने देव को पहले एक-दो बार देखा हुआ था।

आज की चाय का आयोजन प्रतिदिन की अपेक्षा बहुत बड़े ढंग पर किया गया था। देव की डाक्टरी की, देव की कविता की, बहुत प्रशंसा होती रही। देव का शरीर दुबला-पतला था, क्रद लम्बा था, रंग बहुत साफ़ तो नहीं परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली था। देव के मुख पर हँसी बहुत न आती थी, एक प्रकार की गम्भीरता-सी छाई रहती थी, वरन् कई बार बातें करते-करते उसके मुख पर वैराग्य की एक फलक-सी छा जाती थी। कुमारी की सभी सहेलियों को वह अच्छा लगता था, परन्तु उसकी गम्भीरता के सामने वह बहुत हँस-खेल न सकती थीं। आज सबने हँसते हुए देव को बधाई दी। देव की समझ में कुछ न आया। परन्तु एक गरम सूट के उपहार के साथ “जन्म दिन की

बधाई” के कार्ड ने उसे बता दिया कि यह देव का जन्म-दिवस मनाया जा रहा था। यह उपहार डाक्टर रविशंकर की ओर से था और वह कह रहे थे कि देव उन्हें पुत्र के समान प्रिय है।

चाय समाप्त हो गई। सब अतिथि चले गए। कुमारी देव को अपने कमरे में ले आई।

“मुझे आज ज़रा जल्दी है, क्या मैं जा सकता हूँ?” देव ने बहुत सोचने के बाद कह ही डाला।

“यदि पूछने का सवाल है तो नहीं जा सकते” कुमारी आज कुछ शोख थी।

“तो इसका यह मतलब है कि यदि माँगने से आज्ञा न मिले तो आज्ञा बिना प्राप्त किये ही जा सकने की छुट्टा की जा सकती है।”

“ज़बरदस्ती के आगे हार मानने के सिवा और क्या किया जा सकता है।” कुमारी ने बड़ी नम्रता से कहा।

“न जाने देना भी तो ज़बरदस्ती है।”

“फिर आप हार मान लीजिये।” कुमारी हँस पड़ी।

“यदि मुझ अकेले के हार मानने का प्रश्न होता तो कोई बात न थी, मैं बहुत कुछ हार कर भी कुमारी को खुश कर लेता, किन्तु...”।

“आप हार मानिये चाहे न मानिये, कुमारी सदा खुश रहेगी।” कुमारी के स्वर में नम्रता आ गई।

“तो अब क्या आज्ञा है?” देव चुपचाप आज्ञाकारी बालक की भाँति कमरे में बैठ गया।

“इधर आइये।” कुमारी ने अलमारी खोली। “अपने जन्म-दिवस पर क्या मेरा उपहार स्वीकार न करेंगे?”

देव ने आगे बढ़कर देखा कुमारी का बनाया हुआ देव का चित्र था। देव जानता था कि कुमारी को चित्रकला का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है किन्तु वह यह नहीं जानता था कि वह इस कला में इतनी प्रवीण है। साधारण पोज़ था। देव को ऐसा प्रतीत हुआ कि इस चित्र में उसकी

मुखाकृति अधिक निखरी हुई है। देव ने सोचा, कुमारी ने उसके नाक नङ्गश को भली-भाँति देखा होगा, उन्हें विचारों में चित्रित किया होगा, फिर कई-कई घंटों की साधना से कागज पर अंकित किया होगा। किन्तु इन सब बातों से अधिक देव चित्र पर एक फूलों का हार चढ़ा हुआ देखकर घबरा गया।

“कला की सराहना किन शब्दों में करूँ। परन्तु कुमारी.....”

“क्या कह रहे थे आप?”

“इस उपकार का बदला कैसे चुकाऊँगा, मेरे पास तो कुछ भी नहीं।”

“उपकार यह है नहीं और उपहार कभी बेचा नहीं जाता। मैं इसके बदले में कुछ नहीं चाहती।” कुमारी ने सिर मुका लिया।

“पर इसके गले में यह हार क्यों?”

“क्या आज आपका जन्म दिन नहीं? सोचा था आपके गले में पहिनाऊँगी, परन्तु साहस न हुआ।” कुमारी सिर नीचा ही किये रही। देव का मन किया कि वह कह दे, “कुमारी, यह साहस कभी न करना” परन्तु वह कह न सका। इतनी सुगमता से वह कैसे कुमारी का दिल तोड़ देता, वह साहस न कर सका।

“कुमारी! मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। सोचता हूँ मुझे जलवायु परिवर्तन करना चाहिये। मैं पिता जी से आज्ञा लेकर किसी और शहर में काम करूँगा।” देव ने सोच-साच कर कह ही डाला। देव डाक्टर रविशंकर को पिताजी कहा करता था।

कुमारी ने मेज़ का सहारा ले कर देव की ओर देखा। इतना प्यारा उलाहना देव सहन न कर सका, उसने आँखें मुका ली। कुमारी जानती थी कि देव की इच्छा का उल्लंघन सहल नहीं।

“आप का स्वास्थ्य कुछ खराब रहता है?” कुमारी ने चिन्ता भरे स्वर में पूछा।

“हाँ.....कुछ-कुछ.....।” देव ने आँखें मुकाए हुए कहा।

“कौनसे शहर जाना चाहते हैं आप ?”

“ठीक पता नहीं, अभी तो कुछ सोचा भी नहीं है।”

“फिर यहाँ कब आएंगे ?” कुमारी ने सूखे हुए होठों से पूछा। देव पहले तो चुप रहा, फिर बोला,—“कुमारी ! तुम मुझे अपने विवाह पर बुलाओगी न ? बस तभी आऊँगा।”

.....कुछ दिन बीत गए। देव जितना बीमार था, था ही, कुमारी का स्वास्थ्य अवश्य बिगड़ता गया। अपने पिता की वह एकमात्र पुत्री थी, वह भी धनवान पिता की। धन के बाहुल्य में जीवन अधिक मूल्यवान हो जाते हैं; कुमारी के पिता ने कुमारी को किसी स्वास्थ्यप्रद पहाड़ी जलवायु में ले जाने का निश्चय कर लिया और देव को बुला भेजा।

“देव ! कुमारी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, तुमने कभी नोट किया है ?”

“हाँ, मुझे भी कुछ लग तो रहा था।” देव ने अपने स्वाभाविक शांतिपूर्ण ढंग से कहा।

“कुछ नहीं.....काफ़ी।”

.....

“मैं चाहता हूँ, कुछ दिनों के लिए कुमारी को किसी पहाड़ पर ले जाऊँ।”

“ज़रूर ले जाना चाहिए।”

“तुम तो जानते ही हो मेरे घुटने...तुम्हारा साथ चलना भी ज़रूरी है। मैं अकेला उसकी देख-रेख नहीं कर सकता।”

“पिता जी ! पीछे यहाँ इतने फैले हुए काम.....”

“कुमारी का जीवन इन कामों की अपेक्षा अधिक ज़रूरी है।” कुमारी के पिता ने निश्चयपूर्ण स्वर में कहा। अब देव क्या कह सकता था। फिर वह डाक्टर भी तो था, उसका कर्तव्य था कि वह कुमारी की देख-रेख करे।

पहाड़ जाने की तैयारी होने लगी। कुमारी में एक प्रकार का नवोल्लास जाग्रत हो उठा, वहाँ देव किसी और के घर नहीं रहेगा, वहाँ किसी अस्पताल के रोगी उसे न बुलवा सकेंगे। बिमारी कितनी अच्छी वस्तु है, देव कुमारी के समीप न आ सकता था, किन्तु डाक्टर तो बीमार के पास आणगा ही।

देव, कुमारी और उसके पिता बहुत-से नौकरों और पहाड़ जितने सामान को साथ ले कर मसूरी चले गए।

×

×

×

: ६ :

मसूरी की कोठी बहुत बड़ी थी। तीनों के लिए अलग-अलग कमरे थे। यद्यपि वह कमरे सारा-सारा दिन मुँह उठाए, तीनों की प्रतीक्षा करते रहते थे, उन कमरों में कोई बैठता ही नहीं था। डाक्टर रविशंकर बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे रहते थे, कुमारी और देव प्रायः पहाड़ों की चढ़ाइयों और उतराइयों में धूमते रहते थे। यदि तीनों कभी बैठते भी तो एक ही कमरे में। हाँ, रात्रि को सोने के समय उन तीनों कमरों के वासी अपने-अपने कमरे में पहुँच जाते थे।

कुमारी वैसे तो ठीक थी, केवल पिछले महीने से वह कुछ कम खाने लगी थी, कुछ हँसती भी कम थी, कुछ सोती भी कम थी। बस, और उसे कुछ न था। थोड़ी दुबली भी अवश्य हो गई थी। अब तीनों को हँसने खेलने के अतिरिक्त और कोई काम न था। हाँ, पुस्तकें अवश्य इन तीनों जनों के पीछे पड़ी रहती थीं, वह यहाँ पहाड़ पर भी साथ आ गई थीं। गेज़ पर खाना लग जाता, तीनों खाने बैठते, देव तर-कारियों के चमचे भर-भर कर कुमारी की प्लेटों में डाल देता। मलाई की बारी आती तो मक्खन और मलाई के चमचे भर-भर कुमारी के आगे ढेर लगा देता, और हँसकर कहता,—“बाबा, जल्दी से मोटी हो जाओ, हम भी वापस जा कर कुछ काम काज करें।”

इन दिनों कुमारी का हृदय अत्यन्त प्रसन्न था, कहती, “जो वापस ले जाना है तो मैं बिलबुल ही खाना छाँड़े देती हूँ।”

एक दिन नन्ही नन्ही पुहार पड़ रही थी, बहुत हल्की-सी पुहार। पास की कोठी से कुमारी की नई सहेली, उसका भाई, और जो उन के घर एक दो मित्र आए हुए थे वे भी, सब कुमारी के यहाँ आए। सब की सैर जाने की सलाह थी। कुमारी वर्षा के कारण कुछ शिक्क रही थी। किन्तु जब भी उठकर सैर के लिए चल दिए तो वह भी साथ हो ली। वह वैसे भी ज़रा दुर्बल थी। देव ने एक छाता ज़बरदस्ती उसके हाथ में दे दिया। औरों ने कुछ भी नहीं लिया। सब हँसते बोलते चल पड़े। वर्षा थम गई थी।

“मेरे ऊपर व्यर्थ का यह बोझा लाद दिया है” हाथ में लिए हुए बन्द छाते की ओर देखकर कुमारी ने हँसते हुए कहा। देव ने धीरे से छाता कुमारी के हाथ से ले लिया।

“अच्छा छाते को बाँट लेते हैं, जितनी देर मेंह बन्द रहे, छाता मेरा, जितनी देर मेंह बरसता रहे छाता तुम्हारा” देव ने हँसकर कहा। सब हँसते रहे। थोड़ी देर में सचमुच ही हल्की बूँदा बाँदी होने लगी। देव ने छाता खोलकर कुमारी की ओर बढ़ा दिया।

“ऊँह यह बोझ मैं नहीं उठा सकती, आप ही उठाए रखिए। हाँ, आप यदि कहें तो आपके छाते के नीचे आ सकती हूँ। कुमारी हँसकर देव के साथ साथ चलने लगी। देव ने छाता अपने ऊपर कम और कुमारी के ऊपर अधिक किए रखा।

बादलों के छोंटे-छोंटे टुकड़े आपस में आँख-मिचौली खेल रहे थे। मेंह फिर रुक गया। देव ने छाता बन्द करके हाथ में ले लिया। सब उत्फुल्ल हृदय से परस्पर बातें करते और हँसते रहे। देव हाथ में छाता लिए रहा।

“मुझे यह डर है कि कहीं यह भार आपको सदा ही न उठाना पड़े।” कुमारी ने ज़रा देव के समीप हो कर कहा।

देव जानता था कि इस छोटी-सी बात का अर्थ बहुत बड़ा है । परन्तु वह कुमारी से कुछ कह न सका । कुमारी के हृदय में एक अविनाशा उत्पन्न हुई, काश ! देव कह दे “यह छोटा सा भार, यह हल्का सा भार मैं सर्वत्र उठाए रखूँगा, इससे कभी नहीं थकूँगा।” कुमारी सोचती रही, वह देव के कंधों का भार नहीं बनेगी, फूलों से भी हल्का-पंख बन जाएगी, भला पंखों को भी किसी ने भार माना है ? प्रत्युत देव तो इनक सशर उड़ सकेगा ! कुमारी देव के मुख की ओर देखती रही । देव के मुख पर कठोर अथवा कोमल कोई भाव नहीं था । वह बहुत बोलता ।

आगे मोड़ से पगडंडी नीचे खेतों की ओर जाती थी । वही दो-तीन पहाड़ी घर थे । आज वहाँ शायद किसी का विवाह हो रहा था । बहुत सी पहाड़िनें चाँदी के झॉझनें झनकाती इधर उधर घूम रही थीं । आज उन्होंने कोरे नए वस्त्र धारण किए थे । गाड़े रंगों की होली खिली जान पड़ती थी । उनको झॉझनों की झनकार पहाड़ियों और पथरों से टकरा कर वातावरण में एक गूँज सो पैदा कर रही थी । पुरुष सब ऊपर सड़क पर खड़े रहे, कुमारी और उसकी सहेली दोनों पगडंडी से नीचे विवाह वाले घर की ओर चल दीं । नीचे से पहाड़ी युवतियों के गाने की आवाज़ आ रही थी ।

कुमारी और उसकी सहेली जब लौटकर ऊपर आईं, उस समय कुमारी का मुँह उतरा हुआ था ।

“विवाह वाले घर से भला कोई ऐसा आता है ?” देव ने हँस कर पूछा ।

“विवाह ? कैसा विवाह ?” कुमारी ने चकित होकर कहा

“अभी नीचे । विवाह नहीं तो और क्या हो रहा है ?”

“नहीं । वहाँ एक मेला है जिसमें आज बलि चढ़ाई जाएगी । इसी लिए लोग इकट्ठे हुए हैं ।” कुमारी ने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा ।

“यह पहाड़ी लोग कई प्रकार के मेले करते हैं, कई प्रकार की बलि-बलि चढ़ाते हैं, कभी इसलिए कि वर्षा हो, कभी इसलिए

कि वर्षा न हो।” उन में से एक ने कहा। सब हँसने लगे। केवल कुमारी नहीं हँसी।

“नहीं, आज एक मनुष्य की बलि चढ़ने वाली है।” कुमारी ने विषादपूर्ण स्वर में कहा।

“अंग्रेज़ी राज में मनुष्य की बलि ? यह कैसे हो सकता है ?”

“हाँ, एक लड़की की बलि, एक नौजवान लड़की की बलि, कुमारी ने उत्तर दिया, “एक बूढ़ा गहनो का ढेर ले का आया है। उसका वंश चलाने वाला कोई नहीं है। सयानों ने कहा है, किसी जवान लड़की की बलि दो शायद उसका वंश चलाने वाला हो जाए।” कुमारी का मुँह रुखा-सा हो गया था।

सब समझ गए कि किसी जवान लड़की का विवाह किसी बूढ़े के साथ होने वाला है। कुमारी इस अन्याय को सहन न कर पा रही थी। औरों के मन भी इस घटना में खिन्न हो गए।

कुमारी की सहेली ने बताया कि यह क्याही जाने वाली लड़की को देखकर आई हैं, भरपूर जवान और बड़ी ही सुन्दर है।

सब लोग सड़क छोड़ पहाड़ी पर ज़रा ऊपर चढ़कर जहाँ छोटी-पगड़ियाँ जा रही थीं, छ़ांटे बड़े पत्थरों पर बैठ गए।

“एक छी कह रही थी कि बूढ़े की तीन पत्नियाँ और हैं।” कुमारी ने कहा।

“लड़की को शायद यइ बात मालूम न होगी, वह तो इतनी उदास न थी” कुमारी की सहेली ने कहा।

“उसे मालूम भी हो तो वह कर क्या सकती है” देव ने तनिक मुसकरा कर कहा। उसकी मुसकान में विषाद की झलक थी।

“मुझे आश्चर्य है, वह लड़की वहाँ जाकर कैसे रहेगी, कैसे खाएगी, हँसेगी, खेलेगी। वह कैसे वहाँ आजीवन रह सकेगी” कुमारी ने कहा।

“यह तो कुछ बात नहीं है, कुमारी ! घर-घर ऐसा ही होता है,

कहीं कुछ ऐसा ही, कहीं कुछ कम” देव ने कहा ।

“मेरी समझ में नहीं आता, जिस घर में वह किसी को प्यार नहीं कर सकेगी, वहाँ वह कैसे रहेगी” कुमारी ने कहा ।

“कुमारी ! प्रतिदिन इतने विवाह होते हैं, इतने लड़के घोड़ी चढ़ते हैं, इतनी लड़कियाँ डोली में सवार होती हैं, क्या वह सब जीवन से प्रेम करते हैं ?” देव ने कुछ ठहर कर पूछा ।

“यदि नहीं करते तो वह किस प्रकार जीवित रहते हैं ? जीवन किस प्रकार चलता है ?” कुमारी के निचले होंठ में एक मिकुड़न-सी आ गई । उसकी बात पत्थर की भाँति सत्य और कठोर था ।

“पर साधारण जीवन तो अपने-अपने पथ पर चलते हो रहते हैं । कोई गिला नहीं, शिकायत नहीं । सब भाँति लोग सन्तुष्ट ही दीख पड़ते हैं” साथियों में से एक ने कहा ।

“हाँ, इसलिए कि सब कुछ उनकी आदत बन जाता है, और आदतें ही धीरे-धीरे जीवन बन जाती हैं । पुरुष पति बनते हैं, स्त्रियाँ पत्नी बनती हैं, दोनों सदा साथ रहते हैं, उनके सन्तान होती हैं, उसे वह पालते हैं, जीवन-भर और किसी का और वह आँख उठा कर भी नहीं देखते, परन्तु कौन कहता है कि उन्हें एक दूसरे से प्रेम होता है” देव कहता जा रहा था, उसके साथी उसके मुख की ओर देख रहे थे “आप हमें स्त्रियों की स्वामी-भक्ति कहेंगे, किन्तु यदि पहले दिन उसी स्त्री का विवाह किसी अन्य पुरुष के साथ कर दिया जाता तो वह उसकी स्वामीभक्त पत्नी बन जाती, उसी की सन्तान को जन्म देती, पालन-पोषण करती, और किसी को और आँख उठा कर भी न देखती । यह स्वामिभक्त तो है अवश्य, किन्तु प्रेम नहीं, आदत मात्र है । हमारा ईंसान आदत है हमारा रोना आदत है, सारा जीना आदत है.....” कहते-कहते देव ने सिग भुका लिया । उसका मुँह तनिक लाल हो गया था । कुमारी श्रद्धापूर्वक उसके मुख की ओर देखती रही । और सब भी देखते रहे । इस कटु सत्य ने उनके मुख पर आश्चर्य का भाव उत्पन्न

कर दिया था। कदाचित् पहले से उन्हें इस सत्य का ज्ञान रहा हो किन्तु जिस ढंग से डाक्टर देव ने इस बात को कहा था उसने सचमुच ही उन्हें आश्चर्य में डाल दिया था। उन्हें लग रहा था मानो वह कोई नई बात सुन रहे हों।

“तो क्या अपनी इच्छा-शक्ति कभी जाग्रत नहीं होती?” कुछ देर के बाद कुमारी ने कहा।

“इच्छा नाम की कोई नई वस्तु हमारे भीतर कभी उत्पन्न ही नहीं होती। हमारे रक्त में पुराने संस्कारों के जो कृमि मिले हुए होते हैं, वही धीरे-धीरे पलते रहते हैं। जो मनुष्य मर चुके हैं, उन्हीं के सिद्धान्त आज के मानव की सम्पूर्ण विचार-धारा पर छाए हुए हैं। जीवन के सभी द्वार उन्हीं से घिरे हुए हैं। वस, मानव भी वैसे ही जीवन यापन करता जाता है। कभी यदि किसी के मस्तिष्क में कोई उथल-पुथल मचती है तो वह कुछ हल्के-से झटके दे कर ही रह जातो है। छोटे-छोटे हिचकोले कुम्भकरण की भाँति सोए हुए वातावरण में क्या अन्तर ला सकते हैं। अभी-अभी जो कुछ कुमारी ने देखा है, उससे जितनी प्रभावित कुमारी हुई है उतनी प्रभावित वह बलि दी जाने वाली लड़की नहीं हुई होगी क्योंकि उस में इतना सब अनुभव करने की क्षमता नहीं है। कुमारी की इन कोमल नाड़ियों में अधिक जाग्रति है। कुमारी ने अत्यन्त दुखी होकर यह घटना सुनाई है, हम सब ने इसे सुना है। परन्तु अभी थोड़ी ही देर में सब इसे भूल जाएंगे। कुमारी भी काम-काज में लग जाएगी, हम सब भी अपने काम से लग जाएंगे। परन्तु वह लड़की अपनी आयु के बाकी लम्बे वर्ष काटती रहेगी। हमने अपनी विचार-शक्ति से जो कुछ भी सोचा है, वह इस लड़की के जीवन के लिए क्या अर्थ रखता है? उसके विवाह के सम्बन्ध में न तो चाँदी के घुँघरी छनछनाने वाली पहाड़ियों ने ही कुछ किया है, और न हमने ही जहाँ तक उस लड़की का सम्बन्ध है, हम सब बराबर हैं। क्या हमारे अड़ौस-पड़ौस में किए जाने वाले पाप-कर्मों के लिए हमारा कोई

उत्तरदायित्व नहीं है ?” देव का मुख अंगारे की भाँति लाल हो गया था ।

सब के रक्त में गरमी की एक लहर सी दौड़ गई, एक अशक्त क्रोध-सा, मानो वह अभी उठकर उस सरल सुन्दर पहाड़ी लड़की को उस बुढ़े हिंसक पशु के पंजों से छुड़ा लेंगे, नहीं तो उस बूढ़े के निर्दयी नख जीवन भर उस कन्या के यौवन को नोचते रहेंगे । इस भावना ने उन सब के रक्त के साथ मिलकर उनके सम्पूर्ण शरीर का एक चक्कर पूरा किया । निस्तब्धता छाई हुई थी । रक्त के दूसरे चक्कर के समय यह भावना कदाचित् भाप बन चुकी थी, इधर-उधर बिखर गई । उल्लेखनीय कुछ न हुआ । सब धीरे-धीरे उठ कर सड़क पर आ गये और अपनी-अपनी कोठियों की ओर लौट गये ।

×

×

: ७ :

कुमारी का स्वास्थ्य पहले से बहुत सुधर गया था । एक दिन भोर होते ही राजकुमारी बिस्तर से उठकर सोने वाले कपड़ों में ही कोठी से बाहर आ गई । पहाड़ की वह प्रातः वेला बड़ी सुहावनी थी, परन्तु राजकुमारी का स्वप्न रंजित मुख उस पहाड़ी वेला से भी कहीं अधिक सुन्दर प्रतीत होता था । कोठी के बाहर चीड़ के ऊँचे वृक्ष थे, स्ट्राबेरी की छोटी-छोटी झाड़ियाँ थीं । राजकुमारी वृक्ष की एक लटकी हुई टहनी को पकड़ कर अपनी बांह को झुलाने लगी । हिलोर सारे शरीर में आ रही थी । राजकुमारी गा रही थी :

मेरी आस लए अंगड़ाइयाँ ।

जाग जवानी जाग जाग,

जागण दियाँ रुताँ आइयाँ ।

सागर विच अज आवण उझाले,

अज मेरे सुपने मतवाले,

अज अलसाया अंग अंग,
 अखियां मेरियां नशिआइयां ।
 मेरी आस लए अंगड़ाइयां ।
 वग नी वाए महकां मतिये,
 हस पौ कलिए, हस पौ पतिए,
 अज मेरे बागां विच चलके,
 आप बहारां आइयां ।
 मेरी आस लए अंगड़ाइयां ।

कुमारी गा रही था। शांत वायु मंडल संगीत-मय हो गया। कोठी में सोए हुए कुमारी के पिता ने अंगड़ाई ली। कुमारी के हर्ष के साथ पिता के हृदय में आशाएँ जाग उठीं। वह खुश थे क्योंकि उनकी बच्ची खुश थी।

देव भी जाग उठा। वह सुनता रहा। उसके भीतर से कोई बोल उठा “राजकुमारी की आँखों पर यह रंगीन ऐनक और कितने दिन रह सकेगी? सुहावने स्वप्न टूट जाएँगे, वीरानियां छा जाएँगी। उसे वास्तविक संसार दिखला दे।”

देव उठा, बाहर आया, दूर से कुमारी को टहनी के झूलने से झूलते देखा, पांव रुक गए। क्या वह ऐसी सुकुमार लड़की का स्वप्न एक पल में नष्ट कर देगा? उसका स्वास्थ्य उभर रहा था, उसकी आशाएँ जाग्रत हो रही थीं, वह उसे कैसे निराश कर सकेगा। कैसे उसके स्वास्थ्य को फिर गिरने देगा? वह अपने पिता के अंधेरे घर का दिया थी, वह उसे किन हाथों से बुझा सकेगा।

कुमारी झूलती रही। झूलते झूलते जब वह मुड़ी तो उसने सामने देव को खड़े देखा। देव अब लौट नहीं सकता था, वह कुमारी के पास आ गया। कुमारी हँसी, परन्तु देव उसके साथ हंसा नहीं केवल मुस्करा दिया।

“देव जी!”

“जी !”

“आप मेरी तरह खुश नहीं ।”

“मैं उतना खुश किस प्रकार हो सकता हूँ, आप राजकुमारी ।”

“अच्छा ?”

“मेरा मतलब केवल नाम से नहीं है, आप वास्तव में एक राज-कुमारी हैं ।”

“अच्छा ?”

“और मैं एक फकीर हूँ ।”

“खूब !” राजकुमारी हँसने लगी ।

“मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ ।”

“अच्छा, फकीर बन कर आए हैं तो राजकुमारी क्या दे ?”
कुमारी हँसती रही ।

“मैं कुछ लेने नहीं आया ।”

“कुछ देने आए हैं ? तो दीजिए ।”

“नहीं, देने भी नहीं” देव की मुद्रा गम्भीर थी ।

“तो फिर ?”

“केवल इतना कहने कि राजकुमारियों के पथ और होते हैं, फकीरों के और । जब राजकुमारियाँ हँसती हैं तब यह आवश्यक नहीं कि फकीर भी हँस सकें ।” देव मुस्करा दिया ।

“अच्छा है । न हँसे फकीर लोग, न चलें वह राजकुमारियों के पथ पर । किन्तु यह तो हो सकता है कि जब फकीर न हँसें तब राजकुमारियाँ भी न हँसें, वे तो फकीरों के पथ पर चल सकती हैं न ! फकीर लोग चलते रहें अपने ही पथ पर !” कुमारी ने इठला कर कहा ।

“नहीं कुमारी जी ! कुमारियों को राजमार्ग ही शोभा देते हैं ।”
देव ने सिर झुका लिया । कुमारी की हँसी रुक गई ।

“देव जी ! कभी कभी जीवनरूपी वृत्त पर आशा का बौर क्यों आ जाता है ?”

“कई वृत्तों पर फल बनने के लिए और कइयों पर झड़ कर गिर जाने के लिए” देव ने उदास होकर कहा ।

“अच्छा, मेरा हाथ देखिए । मेरे भाग्य में क्या लिखा है ?” कुमारी फिर हँसने लगी ।

“मैं चाहता हूँ, सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि इस वृत्त पर खूब बहार आये ।” देव ने द्रवित हो कर कुमारी की ओर देखा ।

“नहीं, आप यह नहीं चाहते ।” कुमारी ने मुस्करा कर एक गहरी सांस ली ।

“नहीं कुमारी ! ऐसा मत कहो, मेरी शुभ इच्छाओं पर सन्देह न करो ।”

“जब फ़कीरों और राजकुमारियों के पथ अलग होंगे तब राजकुमारियों पर कभी बहार नहीं आ सकती”—कहकर राजकुमारी ने सिर झुका लिया । देव वहीं खड़ा रहा । राजकुमारी धीरे धीरे कोठी के भीतर चली गई ।

×

×

×

: ८ :

राजकुमारी के पिता को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि राजकुमारी क्या चाहती है । उसके स्वास्थ्य से, उसकी इच्छाओं से, वह भली भाँति परिचित थे । एक दिन राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ चाय पी रही थी । डाक्टर रविशंकर ने देव को अपने पास बुलाया ।

“देव बेटा !”

“जी !”

“मेरे पास बैठो, कुछ सुनाओ ।”

“अच्छा सुनिये । आज हम सैर करने कैमल बँक गए थे । वहाँ

हमने कुछ कच्चे अनार तोड़े। उनमें दाने बहुत थोड़े थे किन्तु थे बहुत ही मीठे। एक पहाड़िये से हमने पके हुए टमाटर लिए, फिर हमने उसके खेत में से मटर तोड़ने की आज्ञा माँगी.....”

“इन बातों में भी तुम्हारी कविता है, देव !”

“इन बातों में ?”

“हाँ इनमें भी, जीती जागती, हँसती-खेलती कविता। कविता केवल तुम्हारे वेदनापूर्ण गीत ही तो नहीं होती।” डाक्टर रविशंकर हँसने लगे। देव भी हँस दिया।

“मन करता है, तुम मुझे ऐसी ही कविताएँ रोज़ सुनाया करो, और मेरे जीवन के शेष दिन इन्हें सुनते बीत जाएँ।”

“पिता जी !”

“तुम्हारा ‘पिता जी’ कहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। मैं कितना भाग्यवान हूँ, मेरे पास कुमारी और देव जैसे दो बच्चे हैं। देव !....”

“जी !”

“कुमारी तुम्हें देखे बिना जी नहीं सकती।”

“पिता जी !” देव के स्वर में घबराहट थी।

“हाँ देव ! मैं उसे क्या कह सकता हूँ, मैं भी तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।” रविशंकर स्नेह से भर कर हँस पड़े। देव सिर झुकाए बैठा रहा।

“देव यह विवाह कब तक हो जाना चाहिए ?” रविशंकर ने प्रश्न किया। देव इसी बात से डर रहा था, सो हो कर ही रही।

“पिता जी !...विवाह ? मैं....”

“कुमारी सब तरह से तुम्हारे योग्य है।” पिता ने बड़े मानपूर्वक कहा। देव कुछ न बोल सका, फिर उसने धीरे से कहा— “किन्तु मैं कुमारी के योग्य नहीं हूँ।”

“यह हम स्वयं सोच लेंगे।” पिता ने हँस कर कहा। फिर गम्भीर हो गए।

“देव ! तुम जानते हो कुमारी का जीवन मेरे लिए कितना मूल्यवान है ।”

“कुमारी जी का जीवन सभी के लिए मूल्यवान है ।

“तो फिर देव ! मेरी यह भोली तुम्हारे सामने फैली हुई है, इनकार न करना ।” कुमारी के पिता ने दीन होकर कहा । देव सिर से पाँव तक काँप उठा । ऐसे बुजुर्ग की भोली उसके सामने थी ।

“जैसा आप कहें, पिताजी।” देव ने शीघ्रता से कहा । जो कुछ उसके पास था, उसने उस भोली में डाल दिया । रविशंकर के हृदय को सन्तोष हो गया । देव सिर झुका कर चला गया ।

कुमारी आई । पिता ने उसे उल्लासपूर्वक अपने पास बिठाया ।

“कुमारी ! तुम्हारी माँ जीवित नहीं । सारे काम मुझे ही करने पड़ते हैं । आज भगवान् ने यह कृपा भी कर दी कि मुझे लड़का बढ़ने के लिए किसी के द्वार पर न जाना पड़ा, घर बैठे बिठाए हीरे जैसा लड़का मिल गया । सच में तुम बड़ी ही भाग्यशालिनी हो ।”

“पिताजी !” कुमारी अपने पिता के मुख की ओर देखती रह गई ।

“हाँ, कुमारी ! विवाह की तिथि मैं जल्दी ही निश्चित करना चाहता हूँ । देव से मैंने कह दिया है ।” पिता ने आशापूर्ण दृष्टि से कुमारी की ओर देखा । उनका विचार था कि कुमारी के मुख पर हर्ष की लहर दौढ़ जाएगी, वह संकोच करती, लजाती हँस पड़ेगी । किन्तु ऐसा न हुआ ।

“देव जी ने क्या कहा है ?” कुमारी ने शंकित होकर पूछा ।

“कुछ नहीं, उसने कहा जैसी आपकी इच्छा ।” पिता ने कहा । परन्तु कुमारी के मुख पर से शंका के चिह्न दूर नहीं हुए ।

“पिताजी, आपने अच्छा नहीं किया”—कहकर कुमारी ने सिर झुका लिया । पिता के मुख पर आश्चर्य की रेखाएँ उभर आईं ।

“पिताजी ! आप उन्हें समझे नहीं”—कह कर कुमारी वहाँ से चली गई ।

×

×

×

: ६ :

यदि देव को कोई इस समय देखता तो वह उसे अपने कमरे में पलंग पर आँधे मुँह पड़े हुए पाता । यदि कोई उसके तकिये को छूता तो उसे पता चलता कि वह इतना भीगा हुआ था कि निचोड़ा जा सकता था । यदि कोई इस समय उसके पास होता तो वह सुनता—देव कह रहा था, “संसार ने तुम्हें मुझसे छीन लिया । मैं तुम्हारी स्मृति को सँभाले फिरता रहा । संसार को यह भी न भाया । अब वह तुम्हारी स्मृति भी मुझसे छीन लेना चाहता है—”

“नहीं, देव जी ! कोई कुछ भी तो नहीं छीनता ।” कुमारी ने देव के समीप खड़े हो कर कहा । देव चौंक कर उठ बैठा ।

“आप हैं कुमारी जी !” देव ने कहा, परन्तु अपनी भीगी हुई आँखें कुमारी के सामने न उठा सका ।

“देव जी ! मुझे क्षमा कर दीजिये ।” कुमारी पलंग की पट्टी पर बैठ गई ।

“ऐसा न कहिये, कुमारी ! मैं कभी आपको खुशी नहीं दे सका, अब कोशिश करूँगा ।”

“नहीं देव जी ! मैं इस योग्य नहीं ।”

“कुमारी !”

“हाँ, देव जी ! मैं इस योग्य नहीं कि किसी और के स्थान पर अधिकार जमा सकूँ ।” कुमारी ने सिर झुका लिया ।

“किसी और के स्थान का तो प्रश्न ही नहीं, कुमारी ! वह तो अपने स्थान का प्रश्न उठाने अब कभी आएगी ही नहीं, यह तो केवल अपने मन का भ्रम मात्र है ।”

“नहीं देव जी !” कुमारी आगे और कुछ न कह सकी । देव एक दीर्घ श्वास ले कर चुप हो गया ।

“देव जी ! आप किसी से प्रेम करते हैं ?”

“हाँ ।” देव ने अपना सिर नीचा कर लिया ।

“मैं भी यही समझी थी, बहुत दिन हो गये, यही समझी थी ।

“कुमारी ! आप समझी थीं ?”

“हाँ, तभी तो उस स्थान पर अधिकार जमाने का मैं ने कभी विचार नहीं किया ।”

“किन्तु आप आप, कुमारी !...”

“पिता जी ने आप से गलत कहा है कि कुमारी आप से विवाह करना चाहती है । मैंने कभी ऐसा नहीं सोचा ।”

“किन्तु एक दिन आपने स्वयं कहा था कि क़कीरों और राज-कुमारियों के पथ एक होने चाहिए ।”

“एक पथ से मेरा अभिप्राय विवाह तो नहीं था ।” कुमारी हँस पड़ी ।

“विवाह एक प्रकार का साहचर्य है, और सहचरों के ही एक पथ होते हैं ।”

“किन्तु केवल विवाह ही तो साहचर्य का एकमात्र रूप नहीं ।”

“तो फिर ?”

“गुरुदेव ! क्या अपनी शिष्या की परीक्षा ले रहे हैं ?”

“कुमारी !”

“अब तक आप केवल देव थे, अब से गुरुदेव हैं ।” कुमारी हँस दी । फिर बोली “प्रेम प्रियतम की खुशी में है । छीन लेने में, अनुचित अधिकार जमा लेने में वास्तविक विजय नहीं है । पंछी पिंजड़े में पड़े हुए कभी मुक्त-कण्ठ से नहीं गाते । गाना ही जीवन है, उड़ना ही जीवन है ।”

“कुमारी ?”

“आप रूप हैं, आप सुगन्धि हैं, आप पकड़ कर रखने वाली वस्तु नहीं ।”

“कुमारी ?”

“जी, हाँ ।”

“आज की कुमारी अन्य दिनों की कुमारी से भिन्न है ।”

“पहले कुमारी देव की सहचरी थी, आज कुमारी गुरुदेव की शिष्या है ।” कुमारी का मुखमंडल गंभीर हो गया, उस पर एक प्रकार की चमक आ गयी । देव ने सिर झुका लिया ।

“देव जी ! वह तो बहुत ही प्रेम के योग्य होंगी जो कि आपको प्रिय हैं ।” कुमारी के मुख पर प्रसन्नता स्पष्ट दीख रही थी ।

“कुमारी ! आपको उससे भी प्रेम है ?”

“अपने प्रियजन को जो प्रिय हो वह सदा ही प्रिय लगता है, मैंने तो आप से यही सीखा है ।”

“और क्या सीखा है ?” देव हँस पड़ा ।”

“और यह सीखा है कि सच्चे प्रेम की प्राप्ति कभी दुखदाई नहीं होती । शंका, आँसू, लुकना, छिपना, यह सब... प्रेम को इन की क्या आवश्यकता ? यह सब कामनाएँ हैं, लालसाएँ हैं । आपकी कुमारी इन बातों से ऊपर है ।” कुमारी के रोग का अन्त हो गया था, उसकी निर्बलता दूर हो गयी थी, आज उसके मुख पर स्वास्थ्य का आलोक था ।

“आज, कुमारी ! आप और दिनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर दीख रही हैं ।”

“वह कुमारी बावली थी, रोगिनी थी जो विरह की छाया से भी डरती थी जो अपने प्रियतम को कस कर थामे रखना चाहती थी कि कहीं वह भाग न जाये । जो मेरे हृदय में बस चुका है उसे मुझसे कौन छीन सकता है, वही मेरी वास्तविक प्राप्ति है ।” आज कुमारी कहीं दूर, ऊपर मंडलों में विचर रही थी जहाँ न रोग है, न शोक है, न ईर्ष्या है, न लालसा है ।

अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ रही कुमारी को देव भक्ति भावना से देखता रहा ।

“देव जी ! आपने एक दिन अपनी एक कविता सुनाई थी जिसका आशय यह था कि प्रेम की बेल सींचने के लिए मुझे आँसुओं की आवश्यकता नहीं है । देव जी ! क्या आप यह समझते हैं कि केवल आप ही किसी से अतिशय प्रेम कर सकते हैं ? क्या और कोई ?”

“नहीं, कुमारी जी ! आप बहुत ऊँची हैं !” देव की आँखों में श्रद्धा झलक आयी ।

“आज आप मुझे ‘तुम’ के स्थान पर ‘आप’ क्यों कह रहे हैं ?” कुमारी ने हँस कर कहा ।

“ऐसे ही, कुमारी ! न जाने क्यों आदर से झुका जा रहा हूँ ।” देव मुस्करा दिया ।

“आज मैं आपको कैसी लग रही हूँ ?”

“बहुत भली, बहुत सुन्दर, बहुत ऊँची ।”

“बस, इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहती । आपको कुछ अच्छी लगती रहूँ, मेरे लिए यही बहुत है ।”

“नहीं, कुमारी जी ! जहाँ तक अच्छे लगने का सम्बन्ध है आप मुझे बहुत अच्छी लगती हैं । किन्तु...किन्तु मैं जानता हूँ मैं किसी की धरोहर हूँ । यह भी जानता हूँ कि यह धरोहर लौटा भी नहीं सकूँगा । फिर भी उसके नाम पर इसे सँभाल कर रखना तो है ही । न वह इसका उपभोग करेगी, न मैं, न ही और कोई ।

“मैं चकित हूँ कि आपने पिताजी से हाँ कैसे कर दी । आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था ।”

“कुमारी जी ! वह मेरे प्रेम की दुर्बलता नहीं, वरन् मेरे स्वभाव की दुर्बलता थी । मैं इतने वयौवृद्ध और ऐसे स्नेही पुरुष का मन दुखाने का साहस कभी नहीं कर सकता ।”

“देव जी ! मैं जानती हूँ, यह “हाँ” आपका कितना महान बलिदान था ।”

“नहीं, बलिदान नहीं । मुझे ऐसा लगता है कि मेरा अपना मानो कुछ है ही नहीं ।”

“कहिए कहिए, आज मुझमें सब कह डालिए ।”

“प्रकाश में, अंधकार में, कोलाहल में, निस्तब्धता में, हर समय, हर स्थान पर, दो आँखें मेरी ओर देखती रहती हैं । मैं जो कुछ करता हूँ, मेरा प्रत्येक कर्म, उन आँखों के सामने होता है ।”

“कैसी सुन्दर कल्पना है”—कहते हुए कुमारी की आँखों में आँसू छलक आये । कुछ क्षण बीत गये । वार्तालाप उन्हें एक दूसरे के उतना निकट न ला सका था जितना कि निस्तब्धता ला रही थी ।

“मैं उन दो सुन्दर आँखों को आपकी आँखों में देख रही हूँ ।” कुमारी ने देव की ओर ठोक ऐसे देखा मानो बारह वर्ष की तपस्या के बाद किसी को अपने प्रभु की एक झलक प्राप्त हुई हो ।

“कुमारी ! आप मुझे पहचानती हैं, समझती हैं । यदि आप स्वीकार करें, यदि आप अपने पिताजी का मन रखना चाहें तो मैं आपके साथ विवाह कर सकता हूँ । केवल इतनी आज्ञा मुझे अवश्य दे दीजिएगा कि मैं उन आँखों का चित्र इसी प्रकार देखता रहूँ । यह मुझमें न छीनिएगा ।”

“नहीं देव जी ! मैं आपसे ऐसा कुछ नहीं माँगती जो आप किसी और को दे चुके हैं ।”

“हां उसके अतिरिक्त आप जो कुछ चाहें ले सकती हैं ।” देव ने बहुत मँभल कर कहा ।

“मैंने जो ले लिया है, जो ले सकती हूँ, उसे कोई रोक नहीं सकता, आप भी नहीं रोक सकते, विवाह का बन्धन उसके लिए आवश्यक नहीं ।” कुमारी ने हँस कर कहा ।

“ नहीं, कुमारी ! मैं आपके पिता जी से हाँ कर चुका हूँ ।”

“परन्तु मैं तो उससे भी उत्तम वस्तु प्राप्त कर चुकी हूँ। मेरे मन को पूर्ण शान्ति है।”

“अच्छा, अब तो आप फिर बीमार नहीं पड़ेंगी न। मेरी ओर देखिए। मैं हँसता हूँ, खेलता हूँ, खाता-पीता हूँ, जीवन भली भाँति व्यतीत कर रहा हूँ। किसी से प्रेम भी करता हूँ। कभी कभी विरह की पीड़ा की टीस अधिक अनुभव होने लगती है, उसे भी शान्ति पूर्वक सहन करता हूँ। अन्तस्तल की गहराइयों में हलचल हो उठती है। किन्तु जीवन धारा की गम्भीरता उसे प्रत्यक्ष नहीं होने देती। हरियाली की तह के नीचे धरती की अभिष्ट वृक्षों निहित रहती है……।”

“आप रुक क्यों गये, कहिये, आगे कहिये न। आपकी शिष्या इसी प्रकार जीवन बितायेगी। आपके अनुमान से कम न निकलेगी।”

“दुखी प्रेम तो मधुर नहीं हाँता राज !” देव ने आज कुमारी को पहली बार राज कह कर पुकारा। राजकुमारी पुलकित हो उठी।

“कुमारी ! कल रात मैं लिख रहा था, हे अनन्त, मेरी मज्जिल कभी पूरी न हो, इस अपूर्णता में ही जीवन है। पवन को गति के समान मैं चलता रहूँ, उसे ढूँढता रहूँ।”

“देव जी उनका काम क्या था ?” कुमारी ने ऐसे सरल स्वभाव से पूछा कि देव हँस पड़ा।

“ममता” देव ने कहा।

“देव जी ! भगवान ने क्यों उन्हें आपसे छीन लिया ?”

“भगवान ने नहीं छीना, कुमारी ! संसार ने उसे मुझ से छीन लिया है।”

“संसार क्या इतना भयानक है ?” कुमारी का मुख विषादपूर्ण हो गया।

“वह कहाँ है ?” कुमारी ने तनिक ठहर कर पूछा।

“मैंने कभी जानने की चेष्टा नहीं की” देव ने कहा ।

कुमारी आगे और कुछ न पूछ सकी, क्योंकि देव के मुख पर असह्य पीड़ा की झलक आ गई थी ।

“कुमारी ! पहले भी कहीं आपकी सगाई की बात चली थी ।”

“हां, आप से भेंट होने से पहले की बात है ।”

“हां, मुझ से एक बार पिताजी ने भी कहा था । फिर वहां बात पक्की क्यों नहीं हुई ?”

“क्योंकि जीवन आप के साथ पूर्णता प्राप्त करता जान पड़ता था ।” कुमारी ने निस्संकोच कहा । आज देव और कुमारी उस उच्च मानसिक शिखर पर थे जहां साधारण लज्जा कोई मूल्य नहीं रखती ।

“परन्तु वह पूर्णता तो अब अपूर्ण ही रह गयी है ।” देव हंसने लगा ।

“किन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता, देव जी ! मुझे लगता है मुझे पूर्णतया शान्ति प्राप्त हो गई है ।” कुमारी भी हँस पड़ी ।

“यह तो सबसे अच्छा है । अपनी शांति में से एक मुट्ठी अपने पिता जी को भी दे दीजिए ।”

“वह किस तरह ?”

“पिताजी को अपने विवाह के लिए अनुमति दे दीजिए ।”

“मुझे सचमुच विवाह की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।” राजकुमारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“नहीं कुमारी ! इस पूर्णता का विवाह की आवश्यकता से कोई सम्बन्ध नहीं । वह आवश्यकता तो अपने स्थान पर बनी ही रहेगी । मुझे विश्वास है, आप विवाह करके पूर्णतया अपने पति को वफ़ा दे सकती हैं, उसे प्रेम भी कर सकती हैं, क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ आप के और मेरे सामने हैं नहीं ।”

“देव जी ! क्या इस साम्ने में प्रेम नहीं है ?” कुमारी ने चकित हो कर पूछा ।

“नहीं, इस साम्ने में पति वाला प्रेम नहीं । भली भाँति सोचकर बताइये, क्या आप पति के रूप में मेरी कल्पना कर सकती हैं ?”

“नहीं, किन्तु शायद इससे भी महान किसी रूप में ।”

“फिर विवाह से इन्कार किस लिए ?”

“आप ने भी तो अपने अधूरे प्रेम के बाद विवाह नहीं किया ।”

“मेरी बात और है, कुमारी ?”

“वह कैसे ?” कुमारी ने बड़े भोलेपन से पूछा ।

देव ने सोचा, कुमारी की जिज्ञासा को पूर्ति उस के अपने रहस्य को गुप्त रखने से अधिक आवश्यक है ।

“कुमारी, हम मिले । जीवन भर साथ रहने का हमारा प्रण था । वह मुझे अपना पति मानती थी, मैं उसे अपनी पत्नी समझता था । हमारा सम्बन्ध ऐसा था जैसा कि सहज स्वभाव दो आत्माओं के मिलन से उत्पन्न होता है । हमें बिछड़ना पड़ा । उसकी निशानी अभी तक मेरे पास है ।”

“उसकी निशानी ?”

“हां, उसकी याद !” देव ने सिर नीचा कर लिया ।

“अपने जीवन को मैं आपको मरज़ी के आगे कुछ नहीं समझती” कुमारी ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा ।

“वह लड़का कैसा था जिसे पिताजी ने आपके लिए देखा था ?” देव ने पूछा ।

“बहुत अच्छा था । मैं उस लड़के को जानती हूँ । बहुत दूर का वह हमारा सम्बन्धी भी है । अच्छा लड़का है, केवल अन्तर यह है कि आप जैसा अच्छा तो कोई भी नहीं हो सकता ।” कुमारी के हृदय में यह बात कहते समय शायद कुछ पीड़ा रही हो, किन्तु उसके चेहरे से उसका आभास न होता था, वह पूर्णरूप से शान्त थी ।

“आप वहाँ विवाह कर लीजिए” देव ने निर्णयात्मक ढंग से कहा ।

“यदि आपकी इच्छा है तो कर लूंगी।” कुमारी ने सिर झुका लिया ।

“हाँ, यही ठीक है कुमारी !”

“पर किसी के मन का क्या पता । कहीं उन्होंने मुझे आप से न मिलने दिया ! मैं और कुछ नहीं चाहती परन्तु आपसे मिलने पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध मेरे लिए असह्य होगा।” कुमारी ने ठहर कर कहा ।

“कुमारी जी ! अपने ऊपर भरोसा रखिये । जहाँ गुनाह की भावना नहीं है वहाँ कोई भी रोक टिक नहीं सकता ।” देव ने दृढ़ता से कहा ।

“परन्तु कई बार रोकटोक, सन्देह, शंका अकारण ही गुनाह की भावना उत्पन्न कर देते हैं ।”

“इन बातों का दृढ़-चरित्र व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, साधारण लोगों पर ही इनका प्रभाव पड़ सकता है ।” देव ने कहा ।

कुमारी सुनती रही । फिर कुछ देर तक दोनों चुप बैठे रहे । कुमारी का सिर झुका रहा । उसके शरीर में एक प्रकार की शिथिलता-सी आ गयी थी जैसे कोई सुन्दर मूर्ति निश्चल पड़ी हो । देव ने आगे बढ़कर कुमारी के हाथ अपने हाथों में ले लिये और उन्हें उठाकर अपने होठों से लगा लिया ।

“दुर्बलता छोड़िये, कुमारी जी” देव ने बड़े प्रेम और दृढ़ता से कहा ।

: १० :

मसूरी से लौटने पर राजकुमारी के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं । उस लड़के का नाम सोमनाथ था । राजकुमारी ने कह दिया था कि सोमनाथ उसे बहुत पसन्द है ।

विवाह का दिन आ गया । राजकुमारी ने वरी का जोड़ा पहना ।

सिर से पाँव तक रेशम और जरी की लाल और सुनहरी झलक ने कुमारी को मानो एक नया रूप दे दिया। कुमारी ने अपने कमरे के किवाड़ बन्द कर लिये और क्षण भर के लिए एकान्त पाकर पूरे क्रोध के शीशे के सामने खड़ी हो गयी। पास ही मेज़ पर सोमनाथ का चित्र रखा हुआ था। राजकुमारी को ऐसा लगा मानो सोमनाथ एक देवता हैं, शायद गुजरात के सोमनाथ मन्दिर का देवता, और राजकुमारी उसकी दासी है, देवदासी। नर्तकी का रूप और नर्तकी का हृदय राजकुमारी को अपने में ही विराजता जान पड़ा।

आज नर्तकी अपने देवता के मन्दिर में प्रवेश कर रही थी जीवन-भर के लिए। कला ही उसका जीवन था, रूप ही उसका जीवन था। आज उसे अपने देवता के चरणों में रूप और कला को अर्पण करना था। देवदासी, जो अब सोमनाथ के मन्दिर के बाहर कभी न निकलेगी।

कुमारी के हृदय में एक विचित्र-सी जलन थी, पर वह तो नर्तकी थी मान और प्रतिष्ठा की देवी। राजकुमारी झुकी, सोमनाथ के चित्र के सम्मुख झुकी, एक वृत्त के सम्मुख झुकी। धकधक करते हुए हृदय में सारी जलन को समेटते हुए राजकुमारी ने अपने सोमनाथ की देवदासी ने, अपना तन अपना मन अर्पण कर दिया।

विवाह के मन्त्र पढ़े जा चुके थे। राजकुमारी का सिर झुका हुआ था। उसके मुख पर न मुस्कान थी, न आँसू थे।

विदा का समय आ पहुँचा। राजकुमारी के पिता ने उसे प्यार किया। राजकुमारी ने स्नेह को स्वीकार किया। वह न रोयी, न हँसी।

कमरे में कुमारी थी, सोमनाथ था, कुमारी के पिता थे, देव था और कुछ निकट सम्बन्धी थे। विदा का समय था। राजकुमारी देव के पास आयी। दोनों हाथ जोड़े, नयन झुके हुए, सिर भी तनिक झुका हुआ। कुमारी बोली नहीं, किन्तु कुमारी के रोम-रोम से आवाज़ आई "विदा, देव ! जो आज्ञा, देव !"

और यह आवाज़ देव के रोम-रोम में बस गई ।

×

×

×

: ११ :

राजकुमारी चली गयी । दिन पर दिन बीतते गये । राजकुमारी और देव के बीच संकोच की एक दीवार-सी खड़ी हो गयी । न कुमारी ने उसे कभी अपने यहाँ बुलाया और न देव ने ही उसके यहाँ जाकर उसकी कुशल-चेम पूछी ।

कुमारी और सोमनाथ के घर का वातावरण बहुत शान्त था । दैनिक आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु वहाँ उपलब्ध थी । कुमारी शान्त थी, स्थिर थी । सोमनाथ प्रसन्न था ।

इन्हीं दिनों की बात है कुमारी को अचानक अपने शरीर में माँ बनने के लक्षण दिखाई दिये ।

राजकुमारी अलसायी-सी रहती । परन्तु इस आलस्य से एक लाभ अवश्य हुआ, और वह यह कि राजकुमारी और देव के बीच संकोच की जो दीवार-सी खड़ी हो गयी थी और जो कुमारी को एक बहुत बड़ी बात मालूम होती थी, अब केवल एक छोटी-सी बात जान पड़ने लगी ।

सोमनाथ का जन्म-दिन था । राजकुमारी ने बड़े समारोह का आयोजन किया । उस दिन शाम की चाय पर उसने बहुत-से मित्रों तथा परिचितों को आमन्त्रित किया जिनमें देव भी था ।

देव आया । और मित्र भी आये । देव ने ध्यानपूर्वक देखा, राजकुमारी उदास नहीं थी । देव ने शान्ति का एक श्वास लिया ।

वही साधारण बातें, जो प्रायः चाय के समय होती हैं, होती रहीं । सोमनाथ सबका आदर-सरकार करता रहा । सोमनाथ ने देव को पहले कभी बहुत निकट से नहीं देखा था । आज उससे बातें करके देखीं, उसके पास बैठकर देखा । चाय समाप्त हुयी, अग्नि चले गये,

किन्तु उसने देव को न जाने दिया। उसे देव बहुत अच्छा लगा।

बातों में सन्ध्या भी बीत गयी। रात्रि की घनी परछाइयाँ धरती पर उतर आयीं। आज राजकुमारी में पूर्ण आत्म-विश्वास था। वह बहुत स्वस्थ और निखरी हुई दीख रही थी।

“आज की रात आप यहीं रह जाइये।” राजकुमारी ने हँसकर कहा। सोमनाथ ने उससे भी अधिक ज़ोर देकर कहा। देव रुक गया।

न घर वालों ही की आँखों में नींद थी और न ही अतिथि को सोने की जल्दी थी। तीनों जने बैठे बातें करते रहे। न जाने कितने पहर रात बीत चुकी थी जब वह लोग सोये।

सवेरे को चाय की बहुत-सी चीज़ें राजकुमारी ने स्वयं रसोई में जाकर बनायी थीं। नौकर समझे अतिथि का विशेष सस्कार किया जा रहा है।

एक बार मसूरी की कोठी में राजकुमारी ने देव को मटर के समोसे बनाकर खिलाये थे और उसके बाद कई बार देव ने कुमारी से वैसे ही समोसे बनवा कर खाये थे। आज राजकुमारी ने वैसे ही समोसे फिर बनाये। बनाते समय उसे मसूरी की याद आ गयी। गरम घी के हलके टे कुमारी के हाथ पर आ पड़े, कुमारी ने चौककर आंचल से हाथ पोंछ डाला। विशेष निशान तो नहीं पड़ा किन्तु हलकी-सी जलन उस हाथ में होती रही।

देव ने चाय के साथ मटर वाले समोसे देखे तो उस के शरीर में एक सिहरन-सी हो उठी। किन्तु अपने शरीर और मन पर देव को असाधारण अधिकार प्राप्त था। उसकी वास्तविक दशा किसी पर प्रकट न हो सकी। देव ने सब से पहले समोसे को उठाया और हँसकर पृच्छा—“कुमारी जी ! यह समोसे आपने बनाये हैं ?” जब कि वह भली भाँति जानता था कि यह समोसे कुमारी ने ही बनाये थे।

राजकुमारी हँस दी। उसने देव की ओर देखा। किन्तु उस की दृष्टि में, उसकी हँसी में, उपात्म का हल्का-सा पुट था, “क्या

अब कुमारी को देव जी के लिए समोसे बनाने का भी अधिकार नहीं ?”

चाय समाप्त हो चुकी थी । सोमनाथ को भी अपने काम पर जाना था, देव को भी । दोनों जाने के लिए तैयार हो गये । राजकुमारी ने कहा कि शाम को वह फ़िल्म देखने जाना चाहती थी, यदि देव अपने काम से जल्दी छुट्टी पाकर उधर ही आ जाय तो बहुत अच्छा हो ।

देव को कुछ झिझक-सी आयी, किन्तु राजकुमारी के कथन की दृढ़ता तथा सोमनाथ का मुस्कान ने उसे इस झिझक का विशेष तीव्रता से अनुभव न होने दिया । फिर यह ऐसी बात भी न थी जिससे इन्कार कर दिया जाये ।

शाम को देव आ गया । तीनों ने फ़िल्म देखी । फ़िल्म के बाद देव से किसी ने नहीं पूछा कि उसे किसी और जगह जाना था या नहीं । सोमनाथ ने चुपचाप कार अपने घर की ओर मोड़ ली । और उस रात भी देव को अपने ही घर रखा ।

अगले दिन रविवार था । न सोमनाथ को कहीं जाना था, न देव को । इसलिए देव के जाने का प्रश्न ठठने ही नहीं पाया ।

सोमवार को सबेरे जब सोमनाथ और देव अपने काम पर जाने लगे तो राजकुमारी ने हँसकर पूछा कि क्या आज शाम देव अपने घर जायेंगे या इधर ही आयेंगे ।

सब हँसने लगे । राजकुमारी ने देव से वचन ले लिया कि वह उनके घर चौथे-पाँचवे दिन अवश्य आया करेगा ।

×

×

×

: १२ :

राजकुमारी के यहाँ कन्या का जन्म हुआ । राजकुमारी पलंग पर लेटी हुई थी । डाक्टरों और नर्सों को गये अभी कुछ ही देर हुई होगी

कि देव कमरे में आया । राजकुमारी के पास ही नन्ही बालिका लेटी हुई थी । सोमनाथ राजकुमारी के सिरहाने की ओर बेंत की कुर्सी पर बैठा हुआ था । देव ने बालिका के सुन्दर मुखड़े की ओर देखकर कहा “बहुत प्यारी बच्ची है ।”

कुमारी के दुर्बल मुख पर मुस्कान आ गई । “अच्छा, फिर इसका एक प्यारा-सा नाम रख दीजिये ।”

“प्यारी मधु” देव के मुँह से अनायास ही निकल गया । उस दिन से राजकुमारी की पुत्री को सब ‘मधु’ पुकारने लगे ।

अब देव आता, मधु को खिलाता, और मधु भी उन्हीं हाथों में खेलती जिन से अब वह भली-भौति परिचित हो गई थी । अब उन तीनों के बीच परस्पर वात्सलाप का एक विषय था—मधु । या यों कह लीजिए कि मधु एक खेल थी जिसके गिर्द बैठकर तीनों खिलाड़ी खेला करते थे ।

पहले देव अकेला ही आया करता था, परन्तु अब कई बार वह अपने साथ अपने मित्र के पुत्र मन् को भी ले आता था । मन् मधु से काफ़ी बड़ा था, खेल में दोनों बच्चों का साथ भी नहीं था, फिर भी मन् मधु को छोटे-छोटे झुनझुने, रबड़ की गेंद, तथा और कितने ही खिलौनों में खिलाया करता था । मन् के कोई छोटा बहिन या भाई न था । घर पर उसका मन न लगता था । जब कभी देव उसके घर पर कुमारी के घर जाने की बात करता तो मन् भी उसके साथ चलने को तैयार हो जाता ।

इस प्रकार कुमारी, सरला, तथा देव, इन तीनों के घरों में परस्पर घनिष्टता बढ़ती गयी । मन् अब स्कूल जाने लगा था । स्कूल के छोटे छोटे पाठ प्रतिदिन अपने देव चाचा को सुनाया करता था । देव उसका चाचा था, उसका मास्टर था, उसका मित्र था । वह देव के साथ खेलकर अत्यन्त प्रसन्न होता था ।

मन् अपने देव चाचा के साथ आता । कुमारी उसे देखती । मन्

अपने देव चाचा का दुलारा था, कुमारी को भी प्रिय लगता । कुमारी के हृदय की गहराइयों में एक हलचल-सी उठती, एक अति सूक्ष्म विचार उठता—यदि मनु और मधु बड़े होकर एक दूसरे के समीप रहे तो कदाचित् इनमें जीवन का कोई अटूट सम्बन्ध हो जाये ।

×

×

×

दूसरा भाग

एक

: १ :

रंजू एक वर्ष की हुई। रंजू दो वर्ष की हुई। घुटलियों चलने लगी, दौड़ने लगी। रंजू स्कूल गई। रंजू कालिज में आ गई।

कुछ वर्ष पहले जगदीश ने दूसरा विवाह कर लिया था। जगदीश की माँ अपने धनवान पुत्र के उदास जीवन को देखकर रोया करती थीं। उन्होंने एक लड़की ठीक की थी। जगदीश ने भी माँ से कह दिया था कि वह जो उचित समझें करें। माँ ने विवाह रच दिया था; जगदीश ने विवाह करवा लिया था।

कुछ वर्ष और बीत गये। जगदीश के घर में न कोई पुत्र उत्पन्न हुआ, न और पुत्री ही। जगदीश की दूसरी पत्नी अपने भतीजे को गोद लेना चाहती थी, पर जगदीश न माना। इस कारण वह अनमनी-सी रहने लगी थी और बहुत करके तो अपने मायके ही रहती।

जगदीश को घोड़े की सवारी का शौक अपने पिता से प्राप्त हुआ था। इस बार जब जगदीश उसकी पुत्री रंजू और जगदीश की दूसरी पत्नी शिमले गए तो वहाँ जगदीश ने घोड़े की सवारी आरम्भ कर दी।

एक दिन जगदीश की पत्नी को ठंड लग गई थी, वह सैर करने नहीं गई। रंजू उसके पास थी। जगदीश घर बैठे-बैठे शाम न बिता सका। एक घोड़ा किराये पर लेकर सैर करने चला गया। मशोबरे को जाने वाली सड़क पर उसने घोड़े को खूब दौड़ाया। नीचे की सड़क

पर एक बस जा रही थी। पहाड़ी के गोल मोड़ पर से जाते हुए बस ने हार्न बजाया। पहाड़ी के एकान्त में हार्न की आवाज़ कदाचित्त बहुत ज़ोर से गूँज उठी। घोड़ा बिदक कर उछला। सबक की एक ओर खड़ु थी, घोड़े का पाँव उस ओर जा पड़ा और घोड़ा सवार को लिए हुए नीचे ढलवान में जा गिरा।

पास से जाती हुई बस को इस दुर्घटना का पता चला तो वह रुक गई। यात्री बस से उतर आए। उन्होंने कुछ पहाड़ी लोगों को इकट्ठा किया। लोग खड़े हुए मृत्यु की इस भयानक घटना को देखते रहे। कुछ पहाड़ी खड़ु के ढाल की बल खाती हुई पगडंडियों पर से नीचे उतरे जहाँ घोड़ा और सवार दोनों दुर्भाग्य का शिकार बने हुए पड़े थे। घोड़े में तनिक भी ज्ञान न थी। सवार की टाँगे किसी पत्थर से टकरा गई थीं, वह लहू-लुहान हो रही थीं। सवार का सिर घोड़े के पेट पर टिका हुआ था, उस पर कहीं चोट नहीं आई थी। पहाड़ियों ने सवार को उठाकर अपनी पीठ पर लादा और एक-दूसरे का सहारा लेते हुए उसे ऊपर ले आए। लोगों ने उसे हस्पताल पहुँचा दिया, और हस्पताल वालों ने उसकी जेब के कागज़ों से उसका पता जान कर उसके घर खबर पहुँचा दी।

जगदीश की स्त्री रोई। रंजू रोई।

जगदीश का इलाज होता रहा। उसकी जान बच गई, किन्तु उसकी दोनों टाँगे बेकार हो गईं। उसके लिए एक विशेष हाथ गाड़ी बनवाई गई।

सब लोग पहाड़ से अपने घर लाहौर लौट आए।

जगदीश का जीवन कुछ विचित्र-सा बन गया। वह अपने कारिन्दों को बुलाकर काम-काज समझाता और व्यापार को किसी प्रकार चलाता रहा। परन्तु जीवन के बड़े कार्यों से वह सदा के लिए वंचित हो गया था। जगदीश के जीवन की उदासी और बढ़ गई थी। जगदीश की पत्नी ने उसे बहुत समझाया कि जीवन का क्या भरोसा है, लक्ष्मी अपने

घर चली जायगी, लड़का कोई है नहीं, सम्पत्ति सामेदारों के हाथ लग जायगी। उसने बहुत समझाया कि उसके भतीजे को गोद ले लिया जाय। उसे पूर्ण विश्वास था कि यह चोट खा कर जगदीश अवश्य बदल गया होगा। साथ ही उसने अपनी बात के समर्थन में यह भी कहा कि बुढ़ापे में आप सटश पराधीन को कौन सेवा करेगा। बुढ़ापे में तो वैसे ही मनुष्य दूसरे के अधीन हो जाता है, फिर टाँगों का न होना तो.....

किन्तु जगदीश के विचारों में कोई परिवर्तन न हुआ। उसकी पत्नी की इच्छा अपूर्ण रह गई। वह और अन्य मनस्क रहने लगी। “बेटी से कंवार कोठरी चिनवा लेगी, फिर बाप-बेटी सदा इकट्ठे रहना। तुम्हें कहना तो तीसरा आदमी सुहाता ही नहीं। यह तो मैं ही बुरी हूँ जो बार-बार तुम लोगों के बीच में आ घुसती हूँ।” इसी प्रकार रुष्ट होकर जगदीश की पत्नी अपने पिता के घर चली गई।

रंजू कालिज का समय बड़ी कठिनाई से काटती। बाकी समय में वह कभी भी अपने पिता से अलग न रहती। वह कालिज भी छोड़ देना चाहती थी, परन्तु जगदीश ने उसे ऐसा न करने दिया। रंजू के हर समय समीप रहने से जगदीश की दिनचर्या में रोचकता आ गई थी। रंजू अन्नबार पढ़ती, जगदीश सुनता। रंजू गाती, जगदीश सुनता। जगदीश गाड़ी में बैठा रहता, रंजू अपने हाथों से उस गाड़ी को बगीचे में घुमाती रहती, किसी नौकर को हाथ न लगाने देती। बाग से फूल तोड़ती, पिता की कमीज में टाँक देती। नई क्यारियाँ बनाती, नए फूल लगाती। प्रतिदिन बाप बेटी फूलों के पास जा बैठते, नए खिलते हुए फूलों की गिनती करते, नई कलियों को परखते। नए पुष्पों की ग्याख्या होती, एक कहता, दूसरा सुनता।

रंजू जानती थी कि जिस माँ ने उसे जन्म दिया है वह अभी भी जीवित है। वह यह भी जानती थी कि उसके पिता जी उसकी माँ के सम्बन्ध में कोई भी बात कहने या सुनने से प्रसन्न नहीं होते। रंजू ने

उस मोहरबन्द कहानी को कभी नहीं छेड़ा। उसके पिताजी उसे अच्छे लगते थे। उनके उत्तम विचार, उनका कोमल हृदय, और उनकी प्रखर बुद्धि में उसे कोई भी ऐसा दोष दिखाई नहीं देता था जिससे वह उन्हें अपनी माँ के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला समझती। वह चुप रहती। फिर अब तो उसके पिता अपने शरीर तथा जीवन के मुख्य अंगों से वंचित थे। वे दुखी थे। रंजू ने अपना सा प्रेम और समय हृदय से अपने पिता के अर्पण कर दिया था। उसने प्रण किया था कि अपने जीवन की अन्तिम श्वास तक वह अपने पिता को किसी प्रकार का अभाव अनुभव न होने देगी। वह विवाह भी तभी करेगी जब उसका भावी पति उसके पिता को पुत्र की भाँति प्रिय बन सकेगा अन्यथा वह अविवाहित ही रहेगी।

आज जब पिता-पुत्री फुलवारी में बैठे तो रंजू ने कुछ नव विकसित फूलों के सम्बन्ध में अपनी जानकारी जतलाने के लिए अपने पिता को एक नई खरीदी हुई पुस्तक दिखाई। जगदीश ने उस पुस्तक को देखा परन्तु इस प्रसंग को बढ़ने न दिया।

“रंजू! क्या कभी तुम्हारा मन अपनी माँ के सम्बन्ध में जानने को नहीं करता?” जगदीश ने धीरे से कहा। बड़े ही सहज स्वभाव से यह प्रश्न किया गया था, रंजू अवाक् रह गई। उसने अपने-आपको इस प्रश्न के लिए कभी तैयार ही नहीं किया था, बल्कि वह तो सोचती थी कि यदि कभी आवश्यकता पड़ भी गई तो प्रश्नकर्ता वह स्वयं होगी और उत्तर देने वाले उसके पिता होंगे। परन्तु आज तो बात ही उल्टी हो गई।

“क्यों रंजू?” जगदीश ने कहा। अब यह आवश्यक हो गया कि रंजू कुछ कहे, वह चुप नहीं रह सकती थी।

“आज आप कैसी बातें कर रहे हैं?” रंजू को और कुछ सूझा ही नहीं।

“नहीं रंजू! बताओ न।” जगदीश ने स्नेहपूर्वक कहा।

“मैं तो आप ही को जानती हूँ पितीजी ! आप इतने अच्छे हैं कि मेरा और कुछ जानने को मन ही नहीं करता।” रंजू ने प्यार से अपने पिता के गले में बाहें डालकर कहा।

“रंजू ! मैं अच्छा हूँ, तुम अच्छी हो, परन्तु तुम्हें जन्म देने वाली भी कोई अच्छी ही स्त्री रही होगी, तुमने यह कभी नहीं सोचा ?” जगदीश ने ठहर कर कहा। रंजू कैसे कह सकती थी कि उसने कभी कुछ नहीं सोचा। उसने तो अपना सोचना भी बहुत हद तक अपने पिता की प्रसन्नता पर न्यांछावर कर दिया था।

“आप मेरी किताब तो देखिये। जानते हैं कहाँ से खरीद कर लाई हूँ ? यह बातें फिर कभी कीजियेगा।” रंजू ने कहा। एक फूल तोड़कर उसने अपने पिता के सामने कर दिया। जगदीश ने वह फूल ले लिया, उसे चूमा और अपने मन में सोचा कि रंजू, उसकी समझदार रंजू, अपनी माँ के सम्बन्ध में अवश्य सोचती होगी तभी तो उत्तर देने में आनाकानी कर रही है।

“रंजू ! तुम्हारी माँ बहुत अच्छी है। मुझे दुख है कि वह तुम्हारे जीवन में प्रवेश न कर सकी। इतनी अच्छी माँ का अभाव तुम्हारे जीवन में रह ही गया।” जगदीश ने धैर्य-पूर्वक कहा।

“मेरे जीवन में कोई अभाव नहीं है, आपने इसे सब प्रकार से पूर्ण बना रखा है।” रंजू ने स्नेहपूर्वक कहा। “किन्तु वह.....” रंजू ज़रा रुक गई फिर साहस करके उसने पूछ ही लिया “वह क्यों मेरे जीवन में प्रवेश न कर सकी ?”

जगदीश कुछ उत्तर न दे सका। एक आह भर कर रह गया। रंजू के लिए समस्या और भी जटिल हो गई। पिता भी अच्छा, माँ भी अच्छी, तो फिर बुरा कौन ? कैसा दुर्भाग्य था, कैसा कुटिल विधाता था, जो इन्हें एक-दूसरे के समीप न ला सका।

“रंजू ! आज मन कह रहा है कि अनहोनी को होनी में परिवर्तित कर दूँ।” जगदीश ने संभल कर कहा।

“क्या, पिताजी ?” रंजू की समझ में कुछ न आया था ।

जगदीश चुप रहा । रंजू उत्तर की प्रतीक्षा करती रही । जगदीश सोचने लगा, उसने कहा था, मेरी ममता ने कहा था, “हमारे पथ अलग-अलग हो गए, एक को दूसरे की आवश्यकता न रही ।” वह अब इस पथ पर न आयगी । आदेश अथवा विनती कोई भी उसे लौटाकर नहीं ला सकते । और जगदीश सोचता रहा, मुझे आदेश देने का अथवा विनती करने का अब अधिकार ही क्या है ? अट्ठारह वर्ष हो गए, जीवन का एक पहाड़-सा लम्बा समय बीत गया, जवानी भी चली गई, शरीर भी धोखा दे गया, अब मैं एक अपाहिज की भाँति, किसी असहाय की भाँति, शरीर का आधा धड़ लिये बैठा हूँ, अट्ठारह वर्ष तक मैंने उसकी सुधि नहीं ली, कौन जाने उसने यह समय हँसकर काटा है या रोकर ।

वह भली-भाँति जानता था कि हँस वह सकती नहीं थी, रोना उसके स्वभाव में नहीं था, किन्तु उसने तो कभी उसकी सुधि न ली थी ।

वह जानता था, ममता स्कूल में है, नौकरी कर रही है, बस और कुछ नहीं करती । उसने माता-पिता का आश्रय नहीं लिया, पति की सहायता स्वीकार नहीं की, अपने प्रेमी से वह फिर मिली नहीं, ऐसी स्त्री कोई बिरली, बिरलों में भी बिरली ही हो सकती है ।

जगदीश ने सोचा, ममता का सारा जीवन तो यों ही बीत गया, किन्तु उसने विवाह कर लिया । यह भाग्य का एक खेल था कि उसके और कोई सन्तान न हुई । शायद इस दूसरे विवाह में उसका हृदय-साथी नहीं था, इसलिये भाग्य ने उसकी सहायता की, या फिर वैसे ही..... ।

“वह दोषी नहीं है” जगदीश ने रंजू की ओर देखकर कहा ।

फिर जगदीश ने अपने मन में सोचा, ममता ने किसी से प्रेम किया । वह प्रेम परलज्जित न हो सका । उसने मुझसे विवाह कर लिया

विवाह भी उसकी इच्छा से नहीं हुआ, कर दिया गया.....और मैं !
मैंने समता से प्रेम किया, जानकर या अनजाने ही, किन्तु प्रेम के बदले में प्रेम न मिला । मैंने दूसरा विवाह कर लिया । मैंने जान-बूझ कर दूसरा विवाह किया । नई पत्नी से प्रेम नहीं था, फिर भी विवाह कर लिया । मैं तो उससे भी अधिक दोषी हूँ । वह मुझसे अधिक दोषी नहीं ।

“हाँ, रंजू ! मैं कह रहा था कि आज मन कर रहा है कि एक अन-होनी बात को होनी में परिणत कर दूँ !” जगदीश ने फिर कहा ।

“क्या पिता जी ?” रंजू ने फिर पूछा ।

“रंजू ! यदि तुम्हारी माँ तुम्हें मिला जाय तो तुम्हें कैसा लगे ?” जगदीश ने रंजू को अपनी भुजाओं में भर लिया ।

“पर मैं आप से अलग नहीं हो सकती ।”

“पगली ! मैंने कब कहा कि तुम्हें मुझसे अलग होना पड़ेगा ।”

“पर.....”

“तुम क्या यह समझती हो कि ऐसा होना संभव नहीं ?” जगदीश ने उदास हो कर पूछा ।

“मैं क्या जानूँ, पिता जी !” रंजू कुछ न समझ पा रही थी ।

“ पता नहीं, रंजू ! मुझे ऐसा लगता है कि उसे देखे बिना तो शायद मैं जीवित रह सकता था किन्तु उसे बिना देखे मैं मर नहीं सकूँगा ।” जगदीश का गला भर आया ।

रंजू कुछ न कह सकी ।

“जब मैं घोड़े से गिरा था, उस समय शायद इसी लिये मैं मर नहीं सका ।.....तुम्हारी नई माता का कोई दोष नहीं, मैं उसके निकट न हो सका, वह भी मुझे कभी न समझ सकी, और फिर.....” जिन आँखों में तुम्हारी माँ जैसी स्त्री एक बार समा जाय वह पुरुष कितने ही विवाह क्यों न कर ले उसको आँखों में और कोई स्त्री नहीं

बस सकती।” जगदीश ने आज इतना कुछ रंजू के सामने कह दिया। फिर निढाल होकर उसने कुर्सी का सहारा ले लिया।

रंजू पिता के सिर पर धीरे-धीरे प्यार से हाथ फेरती रही। आज जगदीश भूखा था, प्यार का भूखा। उसकी बच्ची की उँगलियाँ स्नेहपूर्वक उसे स्पर्श कर रही थीं। पर आज केवल इतना उसके लिए पर्याप्त न था। आज वह चाहता था, ममता आ जाए, एक बार आ जाए, और उसके पराधीन शरीर को सहारा दे दे। ममता, जो सहारा ले नहीं सकती थी, दे अवश्य सकती थी।

रंजू ने पिता को हिलाना चाहा, उसे लगा कहीं विचारों में ही वह जम ही न जाएँ।

“वह कहाँ हैं पिताजी?” रंजू ने अपने पिता के माथे पर उँगलियाँ फेरते हुए कहा।

“.....एक स्कूल में। मुझे उसका पता हमेशा मालूम रहा है, किन्तु मैं उसके पास कभी नहीं गया।” जगदीश ने रंजू को बताया।

“आप जो कहें मैं करने को तैयार हूँ।” रंजू ने बहुत सोचने के बाद कहा।

“एक पत्र लिखकर देखूँ?.....शायद.....”

“यदि आप कहें तो मैं किसी आदमी को भेज दूँ।”

“नहीं, उसे लाने के लिये किसी आदमी को भेजना उसका अपमान करना है।” जगदीश ने कहा।

“आप तो जा नहीं सकते, आप कहें तो मैं जा सकती हूँ।” रंजू ने कहा।

“नहीं, रंजू, तुम्हें बीच में डाल कर मैं उसे नहीं पाना चाहता, केवल अपनी ही आवश्यकता उसे जतलाना चाहता हूँ।”

रंजू कागज़ और कलम ले आई। जगदीश ने न जाने क्या लिखा रंजू ने जानने की चेष्टा भी नहीं की। पत्र ढाक में डाल दिया गया।

जगदीश का मन अधीर था। उसका दिल धड़कता रहता। उसके दिन और उसकी रातें उसी धड़कन से परिपूर्ण थीं।

तीसरे दिन संध्या समय जगदीश अपने बगीचे में कुर्सी पर बैठा हुआ था। रंजू पिता के लिए चाय लाने गई हुई थी। बड़े फाटक में से कोई भीतर आया—एक स्त्री की आकृति। जगदीश की साँस तेज़ी से चलने लगी।

जगदीश के कंधों पर मानो पंख लग गए हों, धरती उसके पाँवों तले से खिसकती जा रही हो, मानो जगदीश अपने आपको आकाश के शून्य में उड़ता हुआ अनुभव कर रहा हो। आकाश का शून्य आकर्षक था, आश्चर्यजनक था, “.....परन्तु पाँवों को धरती का सहारा नहीं मिल रहा था। पंखों का कोई भरोसा न था, क्या जाने उड़ा सकें या गिरा दें।

शांत, निर्मल, स्वच्छ, सरल—सैंतीस-अड़तीस वर्ष की आयु में भी अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ने वाली—ममता धीरे मन्थर गति से चली आ रही थी। अन्तर कम होता गया, वह जगदीश के बगीचे की ओर आ गई।

जगदीश के टाँगें थीं ही नहीं, वह उठ ही नहीं सकता था, वह सोच रहा था कि उससे किस प्रकार मिले।

ममता ने आकर सब झिझक दूर कर दी। चुपचाप जगदीश की पीठ के पीछे खड़े होकर उसने जगदीश के कंधों पर अपने हाथ रख दिये।

जगदीश की आँखों से पानी टुलक कर उसकी क्रीड़ा पर आ गिरा। जगदीश ने सोचा, अच्छा हुआ ममता मेरे सन्मुख न आई।

“आप आ गईं !” जगदीश ने सँभल कर कहा।

“मुझे ‘आप’ क्यों कहते हैं, पहले तो आप ‘तुम’ कहा करते थे।” ममता ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कहा।

“मुझे विश्वास नहीं होता ममता !” जगदीश ने कहा।

“क्या आपको मेरे आने की आशा नहीं थी ? आप बुलाएँ और मैं न आऊँ ?” ममता ने धीरे से कहा ।

“इतना समय बीत गया.....” जगदीश का वाक्य अधूरा ही रह गया ।

“आपने कभी सूचना ही नहीं दी कि आपको मेरी आवश्यकता है । आज आपने कहा है तो मैं आ गई हूँ ।” ममता ने कहा ।

“ममता ! तुम कहोगी, जब शरीर के सब अंग पूरे थे, जब भरपूर जवानी थी, मैंने दूसरा विवाह कर लिया । और आज जब शरीर दूसरों पर आश्रित हो गया है, यौवन का सूर्य इतना ढल चुका है, मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ी है ।” जगदीश अपने आपको दोषी ठहरा रहा था ।

“मुझे उलाहना देने का कोई अधिकार नहीं ।” ममता ने शांतिपूर्वक कहा ।

“ममता ! साबत शरीर में भी मेरा मन साबत नहीं था ।” जगदीश ने ठहर कर कहा ।

“मैं जानती हूँ ।” ममता ने धीरे से कहा ।

कुछ क्षण दोनों मौन रहे ।

“मैं डरता था कहीं तुम यहाँ आने में अपनी मान-हानि न समझो ।” जगदीश ने ठहर कर कहा ।

“मेरा मान ऐसा कच्चा नहीं जो इन बातों से टूट सके । वह उस समय तक साबत है जब तक कि मैं उसे ऐसा समझती हूँ ।” ममता ने कहा ।

जगदीश ने बहुत गहरी साँस ली ।

“मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं । मैं सोचता हूँ, मैंने भूल की । मुझे तुम्हारी आवश्यकता थी या नहीं, हाँ, रंजू को तुम्हारी आवश्यकता अवश्य थी । मैंने माँ को बेटी से अलग कर दिया, ऐसी अच्छी माँ को अलग कर दिया ।” जगदीश ने कहा ।

ममता के मन में उसकी पुत्री का चित्र उतर आया। आँखें उसे देखने को व्याकुल हो उठीं। परन्तु ममता कुछ न बोली।

“मेरे बाद रंजू का इस संसार में कोई नहीं। मेरे लिए न सही, उस लड़की के लिए उसकी माँ को लौटा दो।” दो दिन पहले तक जगदीश सोचता था, कि ममता को लौटा लाने के लिए मैं रंजू को आड़ न लूँगा, केवल अपनी ही आवश्यकता प्रकट करूँगा। आज वह इतना गर्वहीन हो गया था, कि वह किसी भी मोल पर ममता को लौटा लेना चाहता था।

“मेरे पास जो कुछ आपके लिए है वह मैं आपको दे सकती हूँ, जो कुछ मेरे पास उस लड़की के लिए है मैं उसे दे सकती हूँ। मैंने अपने जीवन में से जो कुछ भी पहले दिन आपको दिया था वह कभी भी आपसे नहीं छीना।” यह कह कर ममता हँस पड़ी। उसने जगदीश के कंधे को अपनी हथेलियों से और कस कर भीचा।

जगदीश ने ममता का हाथ खींचकर अपने होठों से लगा लिया। उसका जी चाहा कि वह ममता को अपने रोम-रोम में बसा ले।

रंजू चाय लेकर आ रही थी। उस और दोनों की पीठ थी। रंजू ने माँ की पीठ को देखा। चाय की टूँ वह हाथ में पकड़े रह गई। उसके सारे शरीर में एक सनसनी-सी दौड़ गई, आँखों में आँसू उमड़ आए। रंजू सँभली, आगे बढ़कर चाय की टूँ को मेज़ पर रख दिया, और निश्चल खड़ी ममता से चिपट गई।

“माँ……” रंजू ने अपना मुँह ममता की बाँह में छिपा लिया। ममता ने भी जी भर कर रंजू को गले लगाया। बेटी की बरसों की भूख को ममता सप्रकृति थी। उसके संयम के बाँध भी रुकें न रह सके। उसने रंजू को अपने शरीर से कस कर लगाए रखा।

बेटी को माँ मिली, माँ को बेटी। जगदीश और ममता के हृदय में एक दूसरे के लिए आदर था।

जगदीश कहता, उसकी टांगें जाती रहीं, किन्तु उसका जीवन पलट

गया, उसने ममता को पा लिया। वैसे शायद वह आजीवन ममता को बुलाने का कोई बहाना न ढूँढ सकता।

जगदीश की दूसरी स्त्री ने धमकी लिख भेजी, वह कचहरी जाएगी, खर्च माँगेगी, जायदाद में भी उसे हिस्सा मिलना चाहिये। जगदीश हँस पड़ा। उसने मकान, कोठियाँ, बाग़, कुँए, और न जाने क्या-क्या उसकी सम्पत्ति लालसा से भी बहुत अधिक उसके नाम कर दिया।

जगदीश गाड़ी में बैठता, जगदीश पलंग पर लेटता, ममता प्रतिपल उसके पास रहती। जगदीश अपने में एक बालक का सा हल्कापन अनुभव करता। ममता के हाथों नहाता-धोता, खाता-पीता, उठता-बैठता। यह पराधीनता उसे अच्छी लगती। ममता ने उसके रोग को उसका जीवन बना दिया।

रंजू कालिज से आती। उसकी माँ, उसके पिता, बगोचे की फुलवारी के बीच कभी ताश खेलते, कभी पुस्तकें पढ़ते दीख पड़ते। रंजू गद्गद् हो जाती। जाकर उनसे लिपट जाती, उन्हें अपनी बाँहों में कस लेती।

जगदीश तब अनुभव करता, कैसे एक बच्चे का जीवन पिता के बिना भी अधूरा रहता है, और माँ के बिना भी पूर्ण नहीं होता।

: २ :

घटनाएँ घटती रहीं और पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती रही। कितने ही बहारें आईं और चली गईं।

डाक्टर देवराज के अस्पताल में रोगी आते, ठीक होते, चले जाते, और अपनी चारपाइयाँ और अपने वार्ड औरों के लिए खाली कर जाते।

जगदीशचन्द्र का यौवन समाप्त हो गया, ममता का यौवन भी बीत गया, उनकी बेटी रंजू ने युवावस्था में पदार्पण किया।

कृष्णलाल की जवानी बीत गई, सरला की जवानी बीत गई, उनका पुत्र मनु युवावस्था को प्राप्त हुआ ।

राजकुमारी का यौवनकाल समाप्त हो गया, उसके पति का यौवन भी बीत गया, उनकी बेटी मधु यौवन-सम्पन्ना हुई ।

बीते हुए यौवन ने अपना स्थान नवयौवन के लिए खाली कर दिया ।

सूर्य के आकर्षण से खिंची हुई पृथ्वी ने उसके कई चक्कर और कर लिए । मधु कालिज में पढ़ने लगी थी । मनु डाक्टरी की परीक्षा दे रहा था । डाक्टर देव के प्रति राजकुमारी की श्रद्धा उसी प्रकार अडोल थी । मनु डाक्टर देव का प्रिय था, इसलिए वह राजकुमारी का भी प्रिय था । वैसे भी डाक्टर देव के बहुत-से गुण मनु के स्वभाव में प्रकट हो रहे थे । ऐसा लगता था मानो मनु डाक्टर देव के गुणों को अपना रहा हो । राजकुमारी को वह बहुत भला लगता था ।

एक दिन की बात है । मधु कालिज से लौटी । लगभग एक घंटे के बाद उसे अपनी एक सहेली के घर चाय पर जाना था । पुस्तकें रखकर वह जाने की तैयारी में लग गई । मुँह धोया, अपने कमरे में बड़े शीशे के सामने खड़े होकर अपने बाल सँवारे । उसके बाल घने होने के अतिरिक्त कुछ घुँघराले भी थे । बालों के उभार के नीचे उसका गोल मुख अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता था । उसकी त्वचा के रंग में गुलाबी रेशम की-सी झलक थी ।

मधु की माता ने उसे दूर से देखा । मधु राजकुमारी से भी कहीं अधिक सुन्दर थी । वैसे भी तो स्त्री के जीवन की ढलती साँझ अपनी सन्तान के चढ़ते हुए सवेरे में ही आश्रय पाती है ।

शीशे के सामने खड़े-खड़े मधु पास पड़ी हुई मेज़ की ओर देखने लगी । शायद मधु की सुन्दरता ने शीशे में से पलट कर मधु के ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि वह उस मेज़ की ओर देखती ही रही । मेज़ पर दो-तीन छोटे-छोटे चित्र रखे हुए थे जिनमें से एक चित्र मनु

का था। मन् यूवन की एक सुडौल मूर्ति था। मधु देखती रही, देखती रही। वह कदाचित् अपने मन में अपनी और मन् की सुन्दरता की तुलना कर रही थी।

राजकुमारी दूर से देख रही थी। फिर मधु अपनी अलमारी में से कपड़े निकाल कर आज के लिए चुनने लगी, शायद कुछ निश्चय न कर सकी। उसने अपनी माँ को पुकारा।

राजकुमारी ने जाकर मधु के लिए साड़ी निकाल दी। साड़ी के किनारों पर सुनहरी जरी की पतली-सी धारी थी। मधु ने अपने लिए वह जूती निकाली जिस पर हलका सुनहरी काम किया हुआ था। मधु साड़ी पहनने लगी। उसकी माँ की आँखों प्रशंसा उभर रही थी।

साड़ी पहनते समय मधु की दृष्टि फिर मन् के चित्र पर जा टिकी। जब मधु तैयार हो गई तो उसने अनायास ही अपनी बाँहें अपनी माँ के गले में डाल दीं। अपने सौन्दर्य के अनुभव को कदाचित् वह अकेली सहन न कर सकी। उसने माँ की गोद का आश्रय लिया, जिसने उसके इस अस्तित्व को जन्म दिया था। माँ ने उसे अपनी बाँहों में लपेट लिया।

“मधु ! अब तो किसी चोर को बुलाना पड़ेगा।” माँ ने मधु की सुन्दरता के अनुभव को किसी प्रकार व्यक्त करना चाहा।

“माँ ! चोर को ?” मधु माँ के मुँह की ओर ताकने लगी।

“हाँ ! जो आकर मेरी पूँजी को चुरा ले जाय।” माँ हँसने लगी और अपनी पूँजी को फिर अपने से चिपटा लिया।

माँ के गहरे आन्तरिक प्रेम से सराबोर मधु ने चाहा कि वह माँ से कुछ पूछे और उसे कुछ बताए। किन्तु वह यह निश्चय न कर सकी कि बात कैसे चलाई जाए।

“अम्मी ! आपने पापा जी को कैसे चुना था ?” मधु ने अपनी माँ से पूछा।

राजकुमारी ऐसे सीधे प्रश्न के लिए तैयार नहीं थी। एकाएक वह कुछ न कह सकी, फिर उसने अपने आपको सँभाला। उत्तर देना आवश्यक था, क्योंकि सयानी लड़की के प्रश्न को टाला भी नहीं जा सकता था।

“मेरी बात और थी, मधु ! प्रत्येक पीढ़ी अपने से पहली पीढ़ियों से भिन्न ढंग अपनाती है। समय था जब स्वयंवर रचाए जाते थे। वह भी समया आया जब मां-बाप बेटी का सिर-मुँह लपेट कर उसे किसी अपरिचित व्यक्ति के घर भेजने लगे। समय समय की बात है। पर मेरी मधु को तो अपनी इच्छानुसार चलने का पूरा अधिकार प्राप्त है।” राजकुमारी ने कहा। तभी उसके मानस-पट पर अतीत का कोई चित्र उभरने लगा।

मधु का पिता सोमनाथ एक अच्छा मनुष्य था, एक अच्छा पति था। राजकुमारी ने अपनी इच्छा से उसे पति चुना था। अपना प्रेम तथा भक्ति इसको अर्पण की थी। जीवन भर उसकी एक अच्छी पत्नी बन कर रही थी। किन्तु इस समय राजकुमारी के मानसपट पर उभरे चित्र पर एक बहुत धुँधली और कठिनाई से दीख पड़ने वाली झलक पड़ी थी,—वह झलक डाक्टर देव की थी।

राजकुमारी ने कभी भी अपने हृदय में डाक्टर देव को पति का स्थान नहीं दिया था। राजकुमारी ने अपने शरीर को सटकाया। डाक्टर देव का धुँधला-सा चित्र राजकुमारी की आँखों के सामने से हट गया। अनजाने ही एक आह उसके मुँह से निकल गई। डाक्टर देव सदा की भाँति एक चमकते हुए तारे की तरह राजकुमारी की आँखों के सामने आकर स्थिर हो गया। राजकुमारी की दृष्टि में डाक्टर देव का आसन सदा ही बहुत ऊँचा था। राजकुमारी ने देव के सत्कार में आदरपूर्वक अपना सिर झुका दिया।

जब राजकुमारी सचेत हुई तब उसने देखा कि मधु की दृष्टि पुनः मेज़ पर रखे हुए मनु के चित्र पर टिकी हुई थी। ऐसी समझदार माँ

को इससे अधिक और कुछ बतलाने की आवश्यकता न थी। ऐसी माँ बेटी के हृदय की प्रत्येक धड़कन को भी समझ सकती है।

“मनू अच्छा लड़का है न !” माँ ने हँसकर कह ही दिया।

“मैं क्या जानूँ।” मधु में शताब्दियों की वह लज्जा प्रकट हुई जो युवावस्था में प्रेम की प्रथम जाग्रति के साथ उत्पन्न होती है। मधु ने अपना मुँह माँ के कंधे पर धर दिया।

: ३ :

सन् १९४७ — भारतवर्ष के इतिहास में सदा स्मरण रहने वाला वर्ष। हिन्दू-मुस्लिम क्रिसादों की आग चारों ओर फैल चुकी थी। किसी शहर के हाथ झुलस गए थे, किसी शहर के पाँव जल गए थे।

आग की लपटें और ऊँची उठीं। गाँवों, शहरों के झुलसे हुए मुँह पहचान में न आते थे। मनुष्य का लहू बहता रहा, घरती पर लाशों की तहें जम गईं। क्रशों के मुँह भीग गए, क्रशों के सिर रक्त-रंजित हो गए।

इसी वर्ष भारत-भूमि दो टुकड़ों में बाँटी गई। पुरानी साम्प्रदायिक टूट गयीं। बटवारे की दीवारों पर पहरें बिठा दिये गए ताकि कोई दूसरे के भाग में आई भूमि पर पाँव न रख सके। फौजों ने बन्दूकें तान लीं।

कभी किसी ओर से कम, कभी किसी ओर से अधिक आपस में ज्यादाती होती रही। नवयुवकों के खून में प्रतिकार की भावना सुलग उठी। प्रतिकार की इस भावना को देश-सेवा समझा गया।

उन्हीं दिनों की बात है। सरला खिड़की में बैठी हुई थी। उसका चेहरा उतरा हुआ था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह बाहर देख लेती थी। घर में दो-एक नौकरों के अतिरिक्त और कोई नहीं था। सरला का मुख और कुम्हलाता जा रहा था। इतने में ही उसने खिड़की में से देखा कि देव आ रहा है। कुम्हलाए मुख पर मानो जल के छींटे पड़ गये।

“भाभी, इस समय बुलाया। कुशल तो है ?”

“कितनी देर हुई जब बुलाने के लिए आदमी भेजा था, अब आण हैं।”

“भाभी ! एक ऐसा रोगी था जिसे छोड़कर नहीं आ सकता था, केस बिगड़ जाने का डर था। वह पुराना ब्लड प्रेशर का रोगी था, आज अचानक.....”

“अच्छा, इस केस को छोड़िये। मेरी बात सुनिये।”

“भाभी ! आपके मुँह पर इतनी घबराहट ! कृष्ण कहाँ है ?”

“टेलीफोन करने गए हैं। हाँ, मेरी बात सुनिये। क्या मनु को आजकल अस्पताल में बहुत काम रहता है ?”

“मनु.....क्यों ? क्या बात है ? अस्पताल प्रतिदिन जाता तो है, पर मैं उसे वहाँ बहुत समय लगाने नहीं देता। मैं जानता हूँ, अभी उसे परीक्षा की तैयारी करनी है। अस्पताल में प्राप्त किया हुआ ज्ञान तैयारी में सहायता अवश्य देगा, फिर भी मैं.....”

“वह तो बस रात को कपूरू लगाने के समय तक ही कहीं घर पहुँचता है।”

“अस्पताल से तो वह बहुत जल्दी लौट आता है, फिर मुझे नहीं मालूम क्या करता है। परन्तु, भाभी, आपने पहले तो कभी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।”

“मैं क्या कहती ?.....मैंने कभी इतने ध्यान से विचार ही नहीं किया था। मैं समझती थी कहीं पढ़ता रहता होगा या अस्पताल में काम करता रहता होगा, पर आज.....” सरला रुक गई।

“कहाँ है, मनु ?”

“घर पर तो है नहीं। कह गया था कि आज रात किसी मित्र के घर रहूँगा, मेरी प्रतीक्षा न करना। उसके जाने के बाद मैं उसका कमरा ठीक करने लगी। मैंने नया मेज़पोश बनाया था, उसकी मेज़ पर बिछा दिया। चीज़ें इधर-उधर रख रही थी कि यह कागज़ उसकी एक पुस्तक

में से गिर पड़ा। उठाकर देखने लगी कि काम का है या नहीं। बड़ा विचित्र-सा कुछ लिखा हुआ जान पड़ा। आप तो जानते ही हैं मैं थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी पढ़ लेती हूँ। यह देखिए न।” सरला ने एक कागज़ देव की ओर बढ़ा दिया।

देव ने देखा, कागज़ पर लिखा हुआ था—

Lal Kucha—Today—O. K.

“लाल कूचा तो निरा मुसलमानों का मोहला है, मेरा कलेजा धक्-धक् कर रहा है। फिर समय कितना बुरा है, आदमी को आदमी नहीं सुहाता। कैसी आग लगी हुई है। शायद मनु उस मोहले में किसी मित्र के घर चला गया है। क्या पता वह किसी मुसलमान मित्र के घर चला गया हो। वह अपनी बात से टलने वाला भी तो नहीं। आजकल मित्रता की आड़ में आपस के बैर निकाले जा रहे हैं।.....” सरला रुआसी हो गई।

“ठहरिये, भाभी ! मुझे सोचने दीजिये। कृष्ण कहाँ फोन करने गया है ?”

“वह तो रमेश को टेलीफोन करने गए हैं। पर मैं कहती हूँ मनु वहाँ नहीं गया। पता नहीं मनु.....” सरला का स्वर अवरुद्ध हो गया, आँसुओं से उसका गला भर आया था। “जवान होकर लड़के-लड़कियाँ अपने माँ-बाप से यह बदला लेते हैं, अपने मन की करते हैं, न किसी से कुछ कहना, न किसी से कुछ सुनना। यह मेरी पार्टी है, यह मेरे मित्र हैं। भला ऐसे बलबों के दिनों में कोई घर से निकलता है। कभी अँधेरे पड़े घर आ घुसे, कभी-कभी आधी रात को सिनेमा देखने चले गए, कभी कफ्यू लगने के बाद भी मनु बाबू साहब का कुछ पता नहीं होता, माँ-बाप की जान चाहे हर समय सूली पर ही लटकी रहे।”

“अच्छा, भाभी ! मैं मनु का पता लगाने जाता हूँ।” देव ने वह कागज़ जेब में रख लिया।

“देव जी ! आप कहाँ जा रहे हैं ? थोड़ी देर में कफ़्यू लग जाएगा, फिर आप कैसे लौटेंगे ?”

“देखी जाएगा ।”

“पर आप जाएँगे कहाँ ? मुझे तो पता ही नहीं वह किधर गया है ।” सरला ने डाक्टर देव को रोकना चाहा । देव रुकना नहीं चाहता था । सरला के मन में शंका उत्पन्न हुई । उसने देव का कोट पकड़ लिया ।

“आपको मेरी सौगन्ध, लाल कूचे मत जाइयेगा । यह समय उधर जाने का नहीं है ।” सरला ने कहा ।

“भाभी !” देव ने विनयपूर्णक कहा । सरला ने कोट छोड़ दिया । देव चला गया ।

×

×

×

: ४ :

अँधेरा पग-पग पर छा गया था । आजकल सन्ध्या समय शहर में वैसे भी सुनसान पड़ जाती थी । कफ़्यू का समय भी होने वाला था । बचे-खुचे लोग बसों में चढ़ने की कर रहे थे । गाड़ी चलाते-चलाते डाक्टर देव ने कोट की जेब में हाथ डालकर ‘कफ़्यू पास’ देखा । पास जेब में ही था । डाक्टर देव मोटर चलाता रहा ।

अगले चौक पर सिपाही का हाथ दूसरी ओर था । डाक्टर देव को मोटर रोकनी पड़ी । पास ही रुकी हुई एक और मोटर में से आवाज़ आई : “हलो ! हलो ! डाक्टर देव !”

देव ने देखा, बराबर वाली मोटर में एक उसका पुराना रोगी था उसका कोई मित्र न था । पर इस रोगी से उसका अच्छा परिचय था ।

“कहिण, क्या बात है ?”

“इस समय किधर ?”

“इधर ज़रा एक रोगी को देखना है।”

“इधर किधर ?.....लाल कूचे में ? डाक्टर साहब ! आज उस ओर न जाइये, ईश्वर का नाम लेकर कहता हूँ।” उस व्यक्ति ने तनिक घबराए हुए स्वर में कहा। डाक्टर देव मुस्करा दिया।

“नहीं, डाक्टर साहब, मैं सच कह रहा हूँ आज उधर खतरा है।” वह इतना ही कह पाया था कि सिपाही ने हाथ दे दिया। दोनों मोटरें अपने-अपने रास्ते पर चली गईं।

लाल कूचे के मोहल्ले के सिरे पर उन दिनों पहरा रहता था ताकि कोई हिन्दू मोहल्ले में प्रवेश न कर सके। डाक्टर देव ने पहर वालों को बताया कि वह एक रोगी को देखने जा रहा है जिसे देखना आवश्यक है। डाक्टर देव मोहल्ले के भीतर चला गया। एक मकान के आगे वह रुक गया।

“बशीर अहमद !” डाक्टर ने द्वार खटखटाया। द्वार खुल गया।

“आप हैं, डाक्टर साहब।” बशीर अहमद चकित हो गया।

“हाँ”—और डाक्टर देव उसके साथ भीतर चला गया।

“मरीज़ का क्या हाल है ?”

“कोई खास बात तो नहीं। धीरे-धीरे ठीक हो रहा है। अभी चारपाई से उठ नहीं सकता।” बशीर अहमद ने अपने पुत्र के सम्बन्ध में कहा।

“आप शायद आश्चर्य कर रहे होंगे कि आपने आज मुझे बुलाया तो नहीं था, फिर मैं क्यों आ गया। मैं यहाँ पास ही एक केस देखने आया था। शायद आपरेशन करना पड़े। सामान तैयार नहीं था। दो घंटे की देर थी। मैं लौटकर घर जा नहीं सकता था। मैंने कहा, चलो अपने मरीज़ का ख़बर ही ले आओ।” डाक्टर देव कुर्सी पर बैठ गया।

“बहुत शुक्रिया !” बशीर अहमद ने हँसकर कहा। उसकी हँसी कुछ खोखली-सी प्रतीत होती थी।

डाक्टर देव सब समझता था, फिर भी वह बैठा रहा, मरीज़ का हाल-चाल पूछता रहा ।

इतने में चार बहुत तगड़े मुसलमान बशीर अहमद के घर आए ।

“डाक्टर साहब ! आज बात क्या है ? अचानक ही यह मेहर-वानियाँ क्यों ?” एक ने कहा ।

“मेहरबानी नहीं, यहाँ तो मेरा एक मरीज़ है ।” डाक्टर ने शान्ति-पूर्वक कहा ।

“मरीज़ या शिकार ?” उन चार जवानों में से एक ने] हँसकर कहा । उसकी हँसी में कितना रोष मिला हुआ था, डाक्टर से छिपा नहीं था ।

“डाक्टर कभी शिकार नहीं करते ।”

“पर इस समय आप डाक्टर नहीं और यह मरीज़ नहीं । आप हिन्दू हैं, यह मुसलमान ।”

“डाक्टर सदा डाक्टर है, मरीज़ चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान ।”

“यह बहुत पुराने समय की बातें हैं, डाक्टर साहब ! हमें आप पर शक है ।”

“शक का कारण ?”

“क्योंकि हिन्दू सदा हिन्दू है, मुसलमान सदा मुसलमान ।”

“यही बात है तो फिर मैं भी कह सकता हूँ कि इन्सान सदा इन्सान है ।” डाक्टर का मुख चमक रहा था ।

“होगा ! पर हम आपकी तलाशी लेना चाहते हैं ।” चारों एक साथ बोल उठे ।

“मैं क्षमा चाहता हूँ, डाक्टर साहब ! मैं आपके ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता, आपने मेरे बच्चे का भयानक रोग दूर किया है । किन्तु समय की हवा इस उपकार से भी प्रबल है ।” बशीर अहमद ने इस प्रकार कहा मानो वह कुछ लज्जित हो ।

“मैं तलाशी देने को तैयार हूँ । किन्तु यदि मेरे पास से एक भी

आपत्तिजनक वस्तु प्राप्त न हुई, तब उसके बदले में आप मुझे क्या देंगे ?”

“हम आपको सही सलामत इस मोहल्ले के बाहर जाने देंगे । हम खुदा की कसम खा कर कहते हैं ।”

डाक्टर देव हँसने लगा । उसने कोट उतार कर रख दिया, केवल कमीज़ पेंट पहने हुए उनके सामने खड़ा हो गया ।

“आज अफ़वाह है कि हमारे मोहल्ले पर हमला किया जाएगा । हमने भी हाथों में चूड़ियाँ नहीं पहनी हुई हैं ।” देव के कोट को टटोलते हुए एक ने कहा ।

सारा मोहल्ला तो न जाने कैसा था, किन्तु इस घर के लोग शिष्ट जान पड़ते थे । उनकी बोलचाल का ढंग बहुत गिरा हुआ नहीं था । अपनी पुरानी आदत के अनुसार डाक्टर देव से अभी तक ‘जी’ कह कर बात कर रहे थे । दूसरे यह बात भी थी कि डाक्टर देव के पास से कोई आपत्तिजनक वस्तु उन्हें नहीं मिली । बटुए में लगभग ३५) रुपये थे, एक ताली, एक ‘कफ़्यू-पास’ और एक टैस्ट-ट्यूब । डाक्टर का औषधियों वाला बक्स उन्होंने अपने कब्ज़े में कर लिया था । भले ही इसमें किसी प्रकार की गैस अथवा अन्य कोई विषैली वस्तु हो, अब तो वह निश्चिन्त हो गए थे ।

“इस समय आप हमारी मुट्ठी में हैं । आपका जीवन हमारी दया पर निर्भर है ।” दो-एक ने हँसकर कहा । डाक्टर भी हँस दिया ।

“आप जानते हैं हमारा प्रण क्या है ? हाथ आये हुए हिन्दू को छोड़ देना ‘.....’ ।”

“किन्तु आज हम ऐसा नहीं होने देंगे ।” वे सब कभी न कभी डाक्टर देव के मरीज़ रह चुके थे ।

“यदि आप इस समय जाना चाहें तो जा सकते हैं । गली के मोड़ तक पहुँचा आना हमारा काम है ।” बशीर अहमद ने कहा ।

“धन्यवाद ! किन्तु यदि आपको हमले का भय है तो मैं सोचता

हूँ शायद यहीं रहकर आप लोगों की कुछ सहायता कर सकूँ।” डाक्टर देव उसी प्रकार बैठा रहा।

“हमारी सहायता ? अपनी सहायता के लिए हमारे पास बहुत कुछ है। आप देखना चाहते हैं ? आइये।” दो व्यक्ति डाक्टर देव को वहाँ से उठा कर कहीं और ले जाना चाहते थे, किन्तु डाक्टर देव ने उठने में कोई विशेष उत्साह प्रकट न किया।

उन्होंने कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र गिन कर बताए। गैसों, गोलियाँ, छुरियाँ, चाकू, और-और भी बहुत से नाम उन्होंने गिनवा दिए। फिर कहा—

“इनके होते हुए, हमें एक निहत्थे मनुष्य की सहायता क्या लाभ पहुँचा सकती है।” एक ने बड़े गर्व से कहा।

“किन्तु यह सब तो सहायता पहुँचाने वाली वस्तुएँ नहीं हैं।” डाक्टर देव ने कहा।

“हम आक्रमणकारियों को ऐसे काट कर फेंक देंगे जैसे……वह भी हमारे ही भाई हैं जिन्होंने वार्डर के उस पार ऐसे-ऐसे कारनामे करके दिखाए हैं……”

डाक्टर ने सब सुना, उनके हृदय में एक टीस-सी उठी, किन्तु वह कुछ बोला नहीं। थोड़ी देर के बाद उसने कहा—“आपके पास गैस है, आपके पास बारूद है, छुरे हैं, पिस्तौलें हैं। पर यह सब तो घाव लगाने वाले हैं। आपके पास मरहम कहाँ है ?”

“तो क्या डाक्टर, तुम एक हिन्दू होकर मुसलमान के घावों पर मरहम लगा सकोगे ?” कहने वाले ने एकाएकी ‘आप’ के स्थान पर ‘तुम’ कहना आरम्भ कर दिया। शायद उसने डाक्टर की मरहम लगाने वाली बात को हँसी में उड़ा देने योग्य समझा था।

“डाक्टर का काम सदा कटे पर मरहम लगाना है।” डाक्टर उसी कुर्सी पर उसी प्रकार शान्त बैठा रहा।

“और अपने भाइयों को घाव लगाने से रोकना नहीं ?” उनमें से

एक ने मुँह पर समझदारी लाने की चेष्टा करते हुए कहा ।

“बस चलते वह भी.....” डाक्टर ने कहा ।

गली में धीरे-धीरे एक भयानक आवाज़ उठी । सबके मुँह पर एकाएकी पीलेपन के बाद रक्त की झलक दीख पड़ने लगी ।

“सावधान !” आक्रमणकारियों के भरे पिस्तौलों वाले हाथों के सामने दिल्ली शहर का लोकप्रिय डाक्टर देव शेर की-सी गरजती हुई आवाज़ में बोल रहा था ।

आक्रमणकारियों में एक के मुँह से आवाज़ निकली “चाचा जी !”

इतने में किसी मनचले ने अपनी छत पर से एक ईंट आक्रमणकारियों पर फेंकी । ईंट किसी के कंधे पर लगी । आक्रमणकारियों में जोश बढ़कर उठा ।

परन्तु डाक्टर देव उनके सामने एक दीवार की भाँति खड़ा था ।

“पहले मुझे अपने पाँवों तले रौंदे बिना आप किसी पर वार नहीं कर सकते ।” डाक्टर देव की इस बात ने पिस्तौलों वाले हाथों को निःशक्त कर दिया ।

मोहल्ले के मुसलमानों पर इस बात का न जाने क्या प्रभाव पड़ा कि वह अपने ईंट फेंकने वाले साथी को पकड़ कर डाक्टर देव के सामने ले आए ।

“आज आप शान्ति के रक्षक हैं, और यह आपका अपराधी है ।” मुसलमानों ने आगे बढ़कर अपने साथी की बाँह डाक्टर देव के हाथ में थमा दी ।

हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के दल डाक्टर देव के दाएँ-बाएँ खड़े थे । किन्तु डाक्टर देव की अवज्ञा करने का साहस दोनों में ही नहीं था ।

“तुम दोषी हो ।” डाक्टर देव ने कहा । दोषी ने सिर झुका लिया ।

“तुम्हें इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा” डाक्टर ने कहा । दोषी चुप

रहा, परन्तु उसके साथियों ने 'हाँ' में सिर हिल दिया। आज उन सब की जान डाक्टर देव ने बचाई थी।

“इस मोहल्ले में जितने हथियार हैं उन सब को तुम स्वयं ले जाकर कल सवेरे पुलिस के हवाले कर देना। यदि ऐसा न किया तो पुलिस आकर स्वयं हथियार रखवा लेगी और इसका परिणाम यह होगा कि बहुत से लोग भी गिरफ्तार किये जाएँगे।”

यह बात सब ने मान ली। उन दिनों सरकारी कानून के अनुसार किसी भी प्रकार का हथियार अपने पास रखना जुर्म था, किन्तु रखे हुए हथियारों को स्वतः पुलिस के हवाले कर देने वाले को कोई दण्ड नहीं दिया जाता था।

आक्रमण करने वाले आण भी, लौट भी गए। हाथों में हथियार उठाए भी गए, किन्तु वह हाथों में ही रह गए।

आन की आन में अनेकों व्यक्ति मृत्यु के मुँह तक पहुँच गए, किन्तु उन्हें फिर जीवन दान भी मिल गया।

डाक्टर देव अपनी मोटर में बैठ कर चला गया। कफ्यू लगा रहा।

×

×

×

: ५ :

सवेरा होते ही कफ्यू खुलने पर मनु अपने घर आया। उस समय उसके चेहरे का रंग ऐसा था मानो वह वर्षों का रोगी हो।

उसकी माँ घबराई हुई थी, उसे देखकर और भी घबरा गई। कृष्णलाल रातभर ठीक से नहीं सो सका था, अभी जाकर ज़रा उसकी आँख लगी थी।

मनु आते ही चारपाई पर सीधा लेट गया। उसे अपने सिद्धान्त, चिरकाल के अपने मित्र, अपनी पार्टी, सभी कुछ थोथा जान पड़ रहा

था। डाक्टर देव का स्नेहपूर्ण मुख इन सब के ऊपर छाया हुआ प्रतीत था। 'धर्म रक्षक सम्मेलन' का सदस्य बने उसे बहुत दिन हो गए थे। उसने अपनी पार्टी तथा अपना काम सब से छिपाए रखा था, देव चाचा से भी, क्योंकि उसकी पार्टी का कुछ ऐसा ही नियम था।

मनू चारपाई से उठा और कुर्सी पर बैठ गया। उसके शरीर का बहुत-सा भाग मेज पर झुका हुआ था। उसकी कोहनियाँ मेज पर टिकी हुई थीं और उसने अपने चिन्ताओं से भरे हुए सिर को अपने दोनों हाथों में थामा हुआ था।

सरला अपने पुत्र के सुडौल कंधों पर झुक गई। अपने पुत्र के लिए उसके हृदय में प्यार उमड़ आया। उसने मनू से कुछ भी न पूछा कि वह रात भर कहाँ रहा था।

“मनू !”

“हाँ, माता जी !”

“इतना उदास।”

“नहीं अम्मी ! थक गया हूँ, उदास तो नहीं हूँ.....” “मनू कभी अपनी माँ को ‘माता जी’ कहता था, कभी प्यार में केवल ‘अम्मी।’

मनू सीधा हो कर बैठ गया, फिर हँसने लगा। किन्तु उसकी माँ को बनावटी हँसी से सन्तोष न हुआ।

“मैं जरा चाची जी के यहाँ हो आऊँ। मुझे एक काम है, आकर चाय पीऊँगा।”

“देव जी बिचारे न जाने कहाँ मारे-मारे फिर रहे होंगे। रात तुम्हें ढूँढने गए थे।।” सरला ने उदासीनतापूर्वक कहा।

“मुझे ढूँढने ?” मनू चौंक उठा।

“मैंने ही तो उन्हें बुलाकर कहा था.....”

“क्या कहा था ?” मनू बैठा हुआ था, उठकर खड़ा हो गया।

“तुम्हारी मेज पर मुझे एक कागज मिला था जिस पर “लाल कूचा” लिखा हुआ था। मैं घबरा गई। वह तो मुसलमानों का मोहल्ला

है। वह तुम्हें न जाने कहाँ-कहाँ ढूँढ रहे होंगे। तुम कल रात..... शायद रमेश के यहाँ रह गए थे न.....” माँ ने मन्नू की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

मन्नू ने माँ की ओर नहीं देखा, उसकी पथराई हुई सी आँखें सामने दीवार पर जमी हुई थीं।

“पहले मुझे अपने पाँवों तले रौंदे बिना आप किसी पर वार नहीं कर सकते।” डाक्टर देव के कल रात के कहे हुए यह शब्द मन्नू के कानों में गूँज रहे थे। “डाक्टर देव ने तुम्हें बचाने के लिए अपने आपको भयानक खतरे में डाला।” यह आवाज मन्नू के हृदय से उठकर उसके कानों में टकरा रही थी।

“माँ!” मन्नू माँ के गले से लिपट गया। “चाचा जी मनुष्य नहीं, देवता हैं।” मन्नू के मुख से निकला।

×

×

×

: ६ :

आज जब मन्नू डाक्टर देव के कमरे में आया, वह चारपाई पर जेटा हुआ था। मन्नू ने पहले कभी देव को इतने दिन चढ़े तक सोते हुए नहीं देखा था। उसे चाचा देव की ओर से चिन्ता हुई।

“चाचा जी!”

“आओ मन्नू!”

“आप इस समय तक.....ऐसे.....”

“कुछ नहीं, मन्नू!”

“चाचा जी!”

“जीने का साहस छूटता हुआ जान पड़ रहा है।” देव की आँखों से आँसू ढुलके तो नहीं, किन्तु उसकी आँखें आसुओं से छलाछल भर आईं।

“चाचा जी !” मन्नू और कुछ न कह सका ।

“आज का अखबार पढ़ा है ।”

“जी हाँ ।”

“और उस गाड़ी का समाचार ?”

“हाँ, मनुष्यों से भरी हुई गाड़ी का वध कर दिया गया है ।”

“मनुष्य इतना गिर गया है... मैं सोच नहीं सकता..... मज़हब एक जन्म है जो इन्सान को पागल बना रहा है, जिसके कारण इन्सान राक्षस बन रहा है, पशु बन रहा है..... सभ्यता, बीसवीं शती, विज्ञान, इनके शव आज बाज़ारों में बिखरे पड़े हैं । मनुष्यता में से सड़ाँद उठ रही है मानो घृणा की दुर्गन्ध वायु के कण-कण में समा गई हो और प्रत्येक व्यक्ति को उसका विष चढ़ गया हो । मनुष्य का मुख साँप के फन के समान हो गया है, किसी को साँप काट लेता है, कोई साँप के फन को कुचल देता है । दुर्गन्धयुक्त मुख वाले लोग, फिटकार बरसाते हुए मुख वाले लोग पागल कुत्तों की भाँति एक दूसरे को काट रहे हैं ।” डाक्टर देव उठकर बैठ गया ।

“हाँ, चाचा जी !” मन्नू ने दुःखपूर्ण स्वर में कहा ।

“स्त्रियों की दशा.....” देव का रोम-रोम काँप उठा ।

×

×

×

“धिकार है इस बीसवीं शताब्दि पर ! इतिहास के पृष्ठ भारत की इस घटना पर मुँह छिपा कर रोएँगे ।..... किन्तु कितना ही क्यों न रोएँ यह दाग धोएँ न जा सकेंगे, दाग जो कि मनुष्य ने मनुष्य के रक्त से समय की उजली चादर पर लगाए हैं.....” देव की वेदना उसके शब्दों से पूर्णतया व्यक्त नहीं हो रही थी ।

×

×

×

“अवतारों द्वारा पालित शताब्दियों की बहू-बेटियों का, माँश्रों बहिनों को मज़हब ने गली-गली फिरवाया, कूचे-कूचे की खाक छनवाई। रो ! मनुष्य जी भर कर रो, अपनी करतूतों पर जन्म भर रो।” देव ने ऐसे कहा मानो उसका हृदय विदीर्ण हो गया हो।

“चाचा जी ! अस्पताल में घायल पर घायल चले आ रहे हैं। सरकार ने अभी सूचना दी है कि आने वाले घायल व्यक्तियों में से आप जितने भी ले सकें अपने अस्पताल में ले लें।”

“मन्नू ! मैं क्या मुँह लेकर उन ज़ख्मियों के सामने जाऊँ ? मेरा मुँह भी उसी मनुष्य के मुँह की भाँति है जिसने उनकी छाती में छुरे भोंके, जिसने उनकी टाँगों में बन्दूकों की गोलियों से छेद कर दिए, जिसने उनकी आँखों चाकुओं से नोच डालीं। उनके सामने जाऊँ ? वह क्या कहेंगे ? आज मनुष्य हमारे पट्टियाँ बाँधने आया है, इसे लाज नहीं आती ? उस समय इसका मरहम कहाँ था जब रास्ता चलते पीछे से इसने पीठ में छुरा भोंका था ? मैं क्या मुँह लेकर उनके सामने जाऊँ ? घातक का मुँह भी मेरे मुँह जैसा ही रहा होगा, उसके मुँह पर भी दो आँखें, नाक, कान……”

“काश, चाचा जी ! संसार के सब व्यक्ति आप जैसे हो सकते !” मन्नू की आँखों में आँसू भर आए।

“मन्नू ! घृणा के दाग कभी घृणा के पानी से नहीं धोए जा सकते।” डाक्टर देव ने कहा। और अनायास ही एक आह उसके मुँह से निकल गई।

×

×

×

: ७ :

सरला अपने कमरे में बैठी मन्नू का स्वेटर बुन रही थी। कभी-कभी सलाई की नोक को अपने दाँतों में दबाकर कुछ मिनटों के लिए

खाली बैठ जाती मानो किसी गहरे सोच में पड़ गई हो। फिर बुनने लगती। एक-आध सलाई और डाल लेती।

जब कृष्ण और डाक्टर देव कमरे में आए उस समय भी सरला बुनने के स्थान पर सलाई को मुँह में दबाए कुछ सोच रही थी। देव आते ही हँस पड़ा।

“मैं बताऊँ, भाभी, आप क्या सोच रही हैं?”

“क्या?”

“आप सोच रही हैं कि इस समय घर में मिठाई है न फल, अब मैं देव को खिलाऊँ तो क्या खिलाऊँ?”

“इस समय तो घर में मिठाई भी है और फल भी। कोई और ज्योतिष लगाइये।” सरला हँसने लगी।

“और...और... हाँ, भाभी! आप इस समय सोच रही हैं कि इन जादों में देव को कैसा स्वेटर बुन कर दूँ।” देव हँस पड़ा।

“हाँ भई! बहुत भारी सोचने वाली बात है, आधा पौंड ऊन लग जाएगा, दिन-रात का परिश्रम अलग” सरला हँस दी।

“पर मुझे बिचारे के लिए तो बहुत भारी प्रश्न है जिसे स्वेटर बुन कर देने वाला कोई है ही नहीं।” देव हँसते-हँसते सरला भाभी के पास सोफे पर जा कर बैठ गया। कृष्णलाल भी एक कुर्सी पर बैठ गया।

“देने वाला नहीं, देने वाली” सरला ने कहा।

“सचमुच, भाभी! जो मैं बाज़ार में स्वेटर खरीदने जाऊँ तो दुकानदार मेरे मुँह की ओर ताकेगा, मन में सोचेगा घर पर बहू-वहू नहीं होगी तभी स्वेटर खरीदने बाज़ार आया है।” देव ने बड़ी गंभीर मुद्रा बना कर कहा।

“या यह सोचेगा कि बहू को बाल-बच्चों में समय न मिलता होगा कि मियाँ को भी कभी एक-आध स्वेटर बुन दे, इसी से बिचारा

मेरी दुकान आया है।” सरला ने हँस कर कहा। कृष्ण और देव दोनों ही उसकी बात पर हँस पड़े।

“अच्छा, भाभी ! क्या सोच रही थीं ?” देव ने पूछा।

“सोच रही थी कि यदि देव जी जीवन भर विवाह न कराएं तो हर वर्ष बिचारी भाभी को ही स्वेटर बना कर देना पड़ेगा, कमीज़ के टूटे हुए बटन लगाने पड़ेंगे, पतलून की मोहरियों पर सिलाई करनी पड़ेगी।”

“फिर ?”

“फिर क्या निश्चय किया है आपने ?”

“सोच रहा हूँ कि विवाह कर के एक बटन लगाने वाली लाना सस्ता सौदा है या किसी दर्ज़ी से ही यह काम करा लेने में सुभीता है।” देव ने फिर गंभीर मुद्रा धारण कर ली। कृष्णलाल खिलखिलाकर हँस पड़ा।

“बटन लगाने वाली के बेटा-बेटी भी तो होंगे।” सरला के स्थान पर कृष्णलाल बोल उठा।

“फिर बेटे की कमीज़ के बटन भी टूट जाया करेंगे, उसके लिए एक और बटन लगाने वाली लानी पड़ेगी यह तो चक्कर में पड़ने की बात हो गई। ना भई, बहुत महँगा सौदा है। बटन लगाने के छोटे से काम के लिए भाभी ही ठीक हैं।” देव हँसने लगा।

“जी ! और भाभी के बाक़ी सब भ्रंशों के लिए यह बिचारा कृष्णलाल !” कृष्णलाल ने अपने हाथ से अपनी ही ओर संकेत करते हुए कहा !

देव हँसता रहा। सरला की हँसी भी रोके नहीं रुकती थी।

“क्या बाक़ी भ्रंश गिन कर बताए जा सकते हैं ?” सरला ने अपना निचला होंठ दाँतों में दबा कर हँसी रोक ली।

“बाक़ी भ्रंशों की कहानी को रहने ही दो, कहीं सुनकर देव का

मन न ललचाने लगे ।” कृष्णलाल ने कहा । तभी मन् कालिज से लौट आया ।

“चाचजी !” मन् बड़े के साथ अदब खड़ा हो गया ।

“क्यों रे ! पहले बाप पैदा हुआ था कि चाचा ? आया तो मुझसे कुछ बोला ही नहीं ।” कृष्णलाल हँसने लगा ।

“घर का जोगी जोगना, आन गाँव का मिद्ध” देव ने उत्तर दिया, और मन् को अपने पास सोफे पर बिठा लिया ।

“एक मैं ही कालतू आदमी हूँ जो सोफे पर नहीं समा सकता, अछूतों की भाँति अलग कुर्मी डाल कर बैठा हूँ ।” कृष्णलाल ने सामने बैठे हुए कहा ।

“गांधीजी के किसी चेले की तुलाकर लाइये, आकर अछूतोद्धार करे ।” सरला ने हँसते हुए कहा ।

“आजकल तो बहुत उद्धार हो रहे हैं । हर धर्म वाले यह सोचकर कि न जाने सकते बुद्धिहीन व्यक्ति अन्य धर्मों में भटकते फिर रहे हैं, उनका उद्धार कर रहे हैं । ज़बरदस्ती किसी के मुँह में गोमाँस, ज़बरदस्ती किसी के गले में जनेऊ का धागा... मानो सब पर पुण्य करने का भूत सवार हो गया हो ।” कहते-कहते डाक्टर देव के मुख पर पीड़ा की झलक दीख पड़ने लगी ।

परस्पर के हास्य विनोद ने गंभीर रूप धारण कर लिया ।

“क्या ठाठ है उद्धार के ! सरकार ज़बरदस्ती उठा कर ले जाई गई स्त्रियों को वापस ला रही है और माँ बाप हैं कि लड़कियों बहनों को लेने से इनकार कर रहे हैं ।” कृष्णलाल ने कहा ।

“आपको मालूम है आज मैं उदास क्यों थी ?” सरला ने कहा ।

“क्यों ?”

“सवेरे ही चाय पी कर मैं कश्मीरी गेट लीला के घर गई थी । आप सोच नहीं सकते कि मैंने लोगों को सड़कों पर किस दुर्दशा में रहते देखा है, कोई छाया नहीं, कोई छप्पर नहीं । किले की दीवार में जो

छोटे-छोटे बुखारचे बने हैं, उनकी चार अंगुल छाया में पूरे परिवार के परिवार पड़े हैं।” सरला ने बड़े दुःख से यह बात कही।

“माताजी, आपने तो कुछ भी नहीं देखा। यदि कहीं आप इन निराश्रयों की वास्तविक दशा पूरी तरह देख लें तो आप न खा सकें न सो सकें।” मनु ने कहा।

“लोग कहा करते थे, इस संसार में गर्व किस बात का, मर कर तो केवल तीन हाथ धरती ही मिलेगी। किन्तु आजकल तो जीते जी भी तीन हाथ स्थान मिलना कठिन हो रहा है” सरला ने कहा।

“ये लोग तो इस आशा पर हैं कि उनकी लोक-सरकार उनके जीवन को बदल देगी, देवताओं की जन्मभूमि विदेशी राज्य की कालिमा दूर करके फिर एक बार स्वर्ग बन जाएगी।” मनु के मुँह पर जोश आ गया। “और ज़रा सरकारी दफ्तरों में जाकर देखिए, घूस और सिफ़ारिश के बिना एक परची भी फ़ाइल से नहीं निकलती।” मनु का मुख तमतमा उठा।

“केवल इंसान बदल देने ही से तो सारी गाड़ी नई नहीं हो जाती। स्वतन्त्रता का तिरंगा झंडा तो अवश्य लहरा रहा है, किन्तु मन में पराधीनता का जो मैल जम गया है, वह उतरते-उतरते ही उतरेगा। हर काम के लिए समय की आवश्यकता है।” कृष्णलाल ने विश्वास भरे स्वर में कहा। फिर भी मैं कह सकता हूँ कि हमारे देश की बाग-डोर अत्यन्त कुशल हाथों में है।” कृष्णलाल ने ही कहा।

“पहले कभी इस पगड़ी वगड़ी का नाम भी नहीं सुना था, किन्तु आजकल तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे इस शब्द में कोई बुराई ही न रह गई हो। खुले रूप से लोग इसका सौदा करते हैं, विज्ञापन छप-वाते हैं, काम काज चलाते हैं। किसी प्रकार की कोई भिन्न नहीं, साफ़ पूछ लेते हैं आप कितनी पगड़ी देंगे?” सरला ने रोषपूर्वक कहा।

“जितना कि पगड़ी का नाम हर एक के मुख पर है, उतनी ही इसकी निन्दा भी व्यापक है। जब किसी बुराई की चर्चा प्रत्येक मनुष्य

के होंठों पर आ जाती है, तब उस बुराई की आयु अधिक न समझनी चाहिए। धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो जाएगा।” कृष्णलाल स्वभाव से ही आशवादी था।

“पर मेरी समझ में नहीं आता कि ज़बरदस्ती उठा कर ले जाई गई लड़कियों के लौट आने पर उनके अपने घर वाले ही उनसे क्यों मुख मोड़ रहे हैं। उनका क्या दोष है?” सरला ने यह बात बड़े दुःख के साथ कही।

“पुराने संस्कार बहुत दृढ़ होते हैं, भाभी!” देव ने समझाने के ढंग से कहा।

“कुछ अपनी बुद्धि भी तो होती है।” सरला ने क्रोधपूर्वक कहा।

“भाभी! बुद्धियाँ इतनी विकसित ही कहाँ हो पाई हैं कि ज़बरदस्ती और मन की इच्छा के अन्तर को समझ सकें।” देव ने फिर समझाते हुए कहा।

“अब तक हजारों लड़कियाँ वापस लाई जा चुकी हैं।” मनु ने कहा।

“अभी और कितनी बाक़ी होंगी?” कृष्णलाल ने पूछा।

“इससे कई गुना अधिक।”

“बस?” डाक्टर देव ने बिचित्र-सा प्रश्न किया।

“हाँ, अख़बार में तो यही था। और यह भी था कि उनके बच्चों का भार सरकार अपने ऊपर ले लेगी” मनु ने कहा।

“यदि किसी नरदीन ने किसी लीलावती को ज़बरदस्ती उठा लिया, या किसी रामचरन ने किसी हमीदा को अपने घर में डाल लिया, उससे ज़बरदस्ती करम करवाए, तो आज सभी यह सोचते हैं कि ग़लत है। किन्तु इसे ठीक किया जा सकता है, बालक का पाप उसके शरीर से उतार कर अलग फेंका जा सकता है” देव कह रहा था।

“हाँ, क्योंकि यह सब बिचारी लड़की की इच्छा से नहीं हुआ, ज़बरदस्ती हुआ है।” कृष्णलाल बोल पड़ा।

“नहीं, केवल इसलिए कि उनके अपने धर्म के अनुसार विवाह की रीति पूरी नहीं हुई।” देव ने ज़ोर देकर कहा। वह कुछ सोचने लगे, कोई कुछ न बोला।

“जब कोई राम नागयण किसी शान्तिदेवी से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर लेता है, वह भी तो ज़बरदस्ती ही होती है। किन्तु उस लड़की को कोई भी वापस लाने की चेष्टा नहीं करता, कोई भी उसके आँचल पर से पाप नहीं झाड़ता, कोई सरकार उसकी सन्तान का दायित्व नहीं लेती, क्योंकि धर्म के अनुसार विवाह की रीति पूरी हो चुकी है। वहाँ हर प्रकार की ज़बरदस्ती उचित है।” देव अपने ध्यान में बोलता गया। सब एकटक उसके मुख की ओर देखते रहे।

“कौन बता सकता है कि ज़बरदस्ती उठा कर ले जाई गई अभी इतनी स्त्रियाँ बाकी हैं? किस सरकार में शक्ति है कि ज़बरदस्ती उठा कर ले जाई गई सारी स्त्रियों को वापस ले आएँ.....” देव का मुँह लाल हो गया था।

कृष्ण, सरला, मनू मंत्रमुग्ध-से देव के मुख की ओर देखते रहे।

×

×

×

: ::

डाक्टर देव सोने की तैयारी में था। वह बिस्तर पर लेटा हुआ था, उसकी पुस्तक के दो-एक पृष्ठ ही बाकी थे।

“चाचा जी ! चाचा जी ! सो गए हैं क्या ?” मनू ने आकर द्वार खटखटाया। मनू की आवाज़ सुनकर डाक्टर देव उठ गया, द्वार खोले और मनू को बिठाया।

“चाचा जी ! आपकी और मेरी आयु में पिता पुत्र का सा अन्तर

है, किन्तु मैंने सदा आपसे मित्रों का सा स्नेह पाया है।” न जाने मनु आगे क्या कहना चाहता था, उसके स्वर में बहुत घबराहट थी।

डाक्टर देव गम्भीरतापूर्वक मुस्करा दिया।

“आज मैंने एक बात सुनी है। गलत है या ठीक। किन्तु वह मैं अपने पिता जी से नहीं कह सकता, आपसे कह सकता हूँ।” मनु बच्चों की भाँति देव के गले से लिपट गया। देव चाचा स्नेहपूर्वक उसकी पीठपर हाथ फेरते रहे।

“चाचा जी ! मेरी ओर देखिये। सच-सच बताइये। यह मैं जानता हूँ कि इस बात में यदि कुछ भी सचाई होगी तो आपको अवश्य उसका ज्ञान होगा। आप पिता जी से बहुत ही निकट हैं, इतने निकट जितना कि और कोई नहीं है। मुझे आज किसी ने यह बताया है कि मेरा जन्म पिता जी के घर में नहीं हुआ था, पिता जी ने मुझे कहीं से लाकर पाला है। क्या यह सच है ?” मनु ने कहा।

जाड़े की उस ठंडी रात में भी डाक्टर देव के माथे पर पसीने की बूँदें फलक आईं। मनु और भी घबरा गया।

“चाचा जी ! आप कुछ कहते क्यों नहीं ? मैं अब नासमझ बच्चा नहीं रह गया हूँ जो मुझपर कोई अनुचित प्रभाव पड़ेगा। आपने मुझे विशाल हृदय वाला बनाया है। मैं सब-कुछ सुन सकता हूँ समझ सकता हूँ। आप मुझे बताइये।” मनु देव की गोदी में लेट-सा गया।

“मनु ! यदि यह बात सच भी हो तो क्या तुम्हारे पिताजी तुम्हारे पिता जी न रहेंगे ? माँ के समान प्यार करने वाली माँ को क्या तुम माँ न समझोगे ?”.....देव मनु की पीठ पर हाथ फेरता रहा।

“नहीं, चाचा जी वह सदा मेरे पिता हैं और वह सदा मेरी माता हैं। मैं सदा उनका पुत्र हूँ। इस बात से मुझ में कोई अन्तर नहीं आ सकता, केवल.....”

“केवल क्या ?”

“यह बात ऐसी है कि सोमनाथ जी के घर तक भी पहुँच सकती

है। उन पर शायद इसका बुरा प्रभाव पड़े। तब.....मधु,.....सारा खेल बिगड़ जाएगा।” मनू की इस बात से देव की समझ में यह पूर्णतया आ गया कि मामला बहुत हद तक बिगड़ भी सकता है।

“चाचा जी ! आप उपेन्द्र को तो जानते हैं। मधु के कालिज में पढ़ता है। कभी-कभी मधु के घर भी आता-जाता है।”

“मुझे तो सदा से ही वह बुरे दिल का आदमी लगता है।

“उसने यह बात केवल मेरे माता-पिता को कष्ट देने के लिए ही नहीं ढूँढ निकाली और कही है वरन् सोमनाथ जी और उनके घरवालों की निगाहों में वह मुझे गिराकर स्वयं चढ़ना चाहता है। मधु की निगाहों में वह मुझे कुछ का कुछ बनाना चाहता है। एक दिन की बात है, चाचा जी ! मधु की एक सहपाठिन है—रंजू। उपेन्द्र उसे फुसलाना चाहता था। रंजू उपेन्द्र के वास्तविक चरित्र से परिचित तो थी नहीं, वह शायद उसकी बातों में आ गई। मधु ने मुझ से सहायता माँगी। उस दिन लड़कियों को घर पहुँचाने वाली बस खराब हो गई थी। उपेन्द्र रंजू को अपनी गाड़ी में बिठा कर उसे घर छोड़ने ले गया। मैं मधु से मिलने के लिए कालिज गया हुआ था। जब मधु को पता चला कि रंजू उपेन्द्र के साथ चली गई है, तो वह रंजू के संकट में पड़ने की आशंका से व्याकुल हो उठी। हमने उपेन्द्र का पीछा किया। मधु की आशंका ठीक ही निकली। उपेन्द्र रंजू को उसके घर न ले जाकर अपने एक मित्र के घर ले गया था। अन्त में यह हुआ कि रंजू का जीवन एक बहुत बड़े संकट से बच गया। किन्तु उसी समय से उपेन्द्र मेरा शत्रु बन गया है। यह शायद उसी शत्रुता का परिणाम है।” मनू ने अपनी चिन्ता का कारण बताते हुए कहा।

“अच्छा, मनू ! यह बताओ कि तुम अपने आपको कैसा समझते हो ?” डाक्टर देव ने पूरी बात सुनने के बाद कहा।

“मैं वैसा ही हूँ चाचा जी ! जैसा कि आज से एक दिन पहले था। इस बात के कारण कुछ और थोड़े ही हो गया हूँ।”

“और आज तुम्हें अपनी माता जी, अपने पिता जी कैसे लगते हैं ?”

“हाँ, वह अवश्य पहले की अपेक्षा अधिक अच्छे जान पड़ते हैं, देवताओं के समान ।”

“फिर संसार का क्या भय ! जब तुम्हारी अपनी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं आया है तब वास्तव में कोई अन्तर नहीं है । अच्छा, तो उसने और क्या कहा ?”

“उसने कहा कि मेरा जन्म एक अविवाहिता के उदर से हुआ था ?”

“इस बात का तुम पर क्या प्रभाव पड़ा ?”

“अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं । हाँ, आश्चर्य बहुत हुआ ।”

“तुम्हें जन्म देने वाली माँ का तुम्हारी दृष्टि में क्या स्थान है ?”

“मुझे सच्चे हृदय से उनसे सहानुभूति है ।”

“और यदि कभी वह तुम्हें मिल जाएँ ?”

“मैं अपना सम्पूर्ण प्रेम उनके अर्पण कर दूँ । जो कि जीवन ने उन्हें नहीं दिया, कानून ने नहीं दिया, जो कि समाज ने उनसे जबर-दस्ती छीन लिया, वह उन्हें लौटा दूँ । उनकी प्यार की भूख में अपने आपको खो दूँ ।”

“शाबाश, मेरे बच्चे ! मुझे तुम से यही आशा थी ।” देव ने मनू को गले लगा लिया ।

“आपका शिष्य होकर, मैं आपकी आशाओं से कम नहीं निकल सकता, चाचा जी ! आपने मुझे जीवन में बहुत-कुछ सिखाया है ।” मनू देव चाचा से चिपटा रहा । कितना ही समय बीत गया ।

“एक दिन तुम्हारे पिता जी स्वयं ही तुम्हें सब कुछ बता देंगे । तुम्हारे जन्म के सम्बन्ध में कई लोगों को पता है, कई सम्बन्धी इस रहस्य को जानते हैं, एक दिन यह बात अवश्य तुम्हारे कानों तक पहुँचेगी, यह सध तुम्हारे पिता जी जानते हैं । उनका विचार है कि जब तुम्हारे कानों में इस बात को ठीक से सुनने की और तुम्हारी बुद्धि

में इसे ठीक से समझ सकने की शक्ति उत्पन्न हो चुकेगी, वह स्वयं ही तुम्हें सचाई से परिचित करा देंगे। तुम्हारा पच्चीसवाँ जन्म-दिन कब है ? हाँ, याद आ गया, अगले महीने। उस रात शायद वह तुम्हें सब कुछ बता देंगे। वह कहते थे, तब उनके भाग्य का निर्णय तुम्हारे हाथ में होगा कि तुम उन्हें अपने जन्म देने वाले माता-पिता समझ सकते हो या नहीं।”

“चाचा जी ! ऐसा न कहिये। वह युग-युगान्तरों के लिए मेरे माता-पिता हैं, मुझे उन पर गर्व है, मैं उन्हीं का अंश हूँ, मुझसे बढ़ कर उनका अंश और कोई नहीं हो सकता।”

“शाबाश ! मेरे बच्चे !”

“मैं सोचता हूँ, न जाने मेरे पिता कौन हैं ?”

“ईसा मसीह के पिता का आज तक किसी को पता नहीं।”

“मेरे मन में विचार आता है कि मेरी माँ को दुनिया वालों और घरवालों से न जाने क्या-क्या सुनना पड़ा होगा। लोग उनका अपमान करते होंगे, उनका तिरस्कार करते होंगे.....।” मनु कह रहा था, डाक्टर देव सुन रहा था। मनुष्य के जीवन में कई क्षण ऐसे भी आते हैं जब कि उसे अपने ऊपर काबू नहीं रहता, सभी बंधन टूटते जान पड़ते हैं, चिरकाल का संचित संयम भी छूटता हुआ प्रतीत होता है। उस समय डाक्टर देव के लिए भी ऐसा ही कोई क्षण आ उपस्थित हुआ था।

“वह देवी थी !” डाक्टर देव के मुख से निकल गया।

“आप उन्हें जानते हैं ? वह जीवित हैं ? बोलिए.....बोलिए... ..।” मनु डाक्टर देव के सामने ऐसे झुककर बैठ गया मानो प्रार्थना की साक्षात् मूर्ति हो।

देव सोच न सका कि उसने क्या कह डाला, अब क्या कहे, अब क्या करे ?

“नहीं, मनु, अब और कुछ न पूछो। तुम्हें अपने चाचा पर विश्वास

हैं न ? जीवन जिस रास्ते पर ले जा रहा है उसी रास्ते पर चले जाओ । प्रकृति को जो-कुछ गुप्त रखना होता है वह सदा गुप्त रहता है, प्रकृति जो कुछ दिखाना चाहती है वह प्रत्यक्ष हो जाता है ।”

“आप जैसा कहें, वही ठीक है ।” मनू ने धैर्यपूर्वक कहा ।

देव और मनू फिर कितनी ही देर चुपचाप बैठे रहे । बातें करने की अपेक्षा इस नीरवता में वह अपने आपको एक दूसरे के अधिक निकट अनुभव कर रहे थे ।

कुछ देर बाद मनू संभला । उसे घर जाना था । वह चला गया ।

कमरे में बिजली का तेज प्रकाश डाक्टर देव को बोझिल प्रतीत होने लगा उस प्रकाश के बोझ के नीचे बैठना उसे कठिन जान पड़ने लगा मानो प्रतिपल प्रतिक्षण वह उस प्रखर प्रकाश में बेनकाब होता जा रहा हो । फिर उसे ध्यान आया कि मनू मधु से प्रेम करता है, डरता है कि कहीं मधु उससे छिन न जाए ।

डाक्टर देव ने बिजली बुझा दी । फैले अन्धकार में वह अपनी चारपाई के सिरहाने की ओर भूमि पर दोनों घुटने टेक कर बैठ गया ।

“मेरी कहानी जीवन-भर अधूरी रही । मनू, भगवान करे तुम्हारी कहानी पूरी हो ।” डाक्टर देव के मुख से निकला ।

न जाने यह शब्द विधाता के कानों तक पहुँचे या नहीं !

×

×

×

: ६ :

दोपहर का समय था । राजकुमारी मधु के दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं को एक-एक करके अपनी बनाई हुई सूची से मिला रही थी और ट्रंक में रखती जा रही थी । इतने में नौकरानी ने आकर कहा कि कोई लड़का मिलने के लिए आया है । राजकुमारी ने पुछवाया कि वह किससे मिलना चाहता है । राजकुमारी ने सोचा कि या तो वह उसके

पति का कोई परिचित व्यक्ति होगा या मधु का कोई सहपाठी मधु से मिलने आया होगा, किन्तु नौकरानी ने आकर बताया कि वह लड़का मधु की माता जी से मिलना चाहता है। राजकुमारी ने हाथ के काम को वहीं छोड़ दिया और बाहर बैठक में उस लड़के को बुलवा लिया।

“माता जी ! मैंने आपको कष्ट दिया है, क्षमा कीजियेगा। किन्तु शायद यह कष्ट आपके भले के लिए सिद्ध हो।” आगन्तुक ने कहा।

“मैं आपका शुभ नाम पूछ सकती हूँ ?”

“मुझे उपेन्द्र कहते हैं। मैं पहले भी तीन-चार बार आपके यहाँ आ चुका हूँ। मैं मधु का क्लास-फ़ैलो हूँ।”

“कहिये।”

“आप शायद मधु की सगाई कर चुकी हैं ?”

“सगाई की रस्म तो नहीं की है, हाँ, विवाह निश्चित कर दिया है।”

“मैं मधु का शुभचिन्तक हूँ, मैं मधु को सुखी देखना चाहता हूँ।”

“कहिये, क्या बात है ?”

“मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है, केवल मधु का सुख.....।”

“आप कहिये जो कहना चाहते हैं। मुझे आपके विषय में कोई शंका नहीं है।”

“एक सम्मानित घराने में एक आवारा, हरामी लड़के का यह सम्बन्ध मुझसे सहन नहीं होता।” उपेन्द्र में जोश की अपेक्षा क्रोध अधिक था।

“मैंने बड़ी शान्ति से आपकी बात सुनी है, किन्तु आपको इतने कड़े शब्द प्रयोग नहीं करने चाहिए।”

“क्योंकि मैं सचाई को जानता हूँ और आप अभी तक वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं।”

“कोई प्रमाण आपके पास.....?”

“मनू सेठ कृष्णलाल जी का अपना पुत्र नहीं है, उन्होंने केवल उसे

पाला है।” उपेन्द्र ने सारा भेद खोलकर सामने रख दिया और एक शूरवीर साहसी सैनिक की भाँति उसने राजकुमारी की ओर देखा।

“यदि आपकी बात मान भी ली जाए तो इसमें हरज ही क्या है। उन्होंने उसे जन्म से पाला है, वह उनका पुत्र ही कहलाएगा।” राजकुमारी ने शान्तिपूर्वक कहा।

“किस निराश्रित और निर्धन बालक को पाला होता तो बात और थी, किन्तु वह तो एक अविवाहित माँ का पुत्र है। उसकी माँ जीवित है, उसका पिता जीवित है। मुझे उसकी माँ का पता तो नहीं मालूम हो सका, किन्तु यह मैं बता सकता हूँ कि उसका पिता कौन है।” उपेन्द्र ने राजकुमारी की ओर उस धनवान व्यक्ति की भाँति देख जो बड़े ठाठ से किसी को एक मुट्ठी भरकर देने के बाद और भी दे सकता हो।

“कौन ?” राजकुमारी ने पूछा।

“डाक्टर देवराज !”

“हैं !”—राजकुमारी के अन्तस्तल में न जाने क्या जाग्रत हो उठा।

“हाँ, माता जी ! मैं कहता था न कि आप सचाई से परिचित नहीं हैं। देवराज उस समय डाक्टरी पढ़ता था जब उसकी प्रेमिका के यह बच्चा हुआ था। माता-पिता ने उनका विवाह नहीं होने दिया और इस बच्चे को एक हस्पताल में दे दिया। अपनी लड़की का विवाह किसी धनवान घराने में कर दिया। देवराज ने सब की चोरी से वह बच्चा अस्पताल से ले लिया। कृष्णलाल देवराज का मित्र था। उसके घर कोई बालक न था। उसने उस बच्चे को पाल लिया।” पूरी बात सुना लेने पर उपेन्द्र को विजयी सेना के सेनापति का सा गर्व अनुभव हो रहा था।

राजकुमारी न जाने किन विचारों में लीन हो गई। उपेन्द्र को ही फिर बोलना पड़ा—“आपको शायद मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है। इस भेद को उस अस्पताल का डाक्टर पूर्णतया जानता था

आप कहेंगी कि डाक्टर कभी किसी से इतनी ज़िम्मेदारी की बात नहीं कहते। ठीक है, किन्तु देवराज और डाक्टर की बातचीत वहाँ की एक नर्स ने सुन ली थी। वही नर्स मेरी माता जी की बीमारी में हमारे घर आती थी। मेरे चाचा जी के कोई सन्तान नहीं है। वह किसी बच्चे को गोद लेना चाहते थे। उन्हीं दिनों उस बच्चे के सम्बन्ध में उस नर्स ने हमारे घर में बात की। चाची जी को बहुत शौक्र आया, उन्होंने वही बालक गोद लेने का निश्चय कर लिया, किन्तु दूसरे ही दिन नर्स से पता चला कि वह बच्चा अस्पताल से किसी और ने ले लिया है। मेरी चाची जी को अपने भाग्य पर इतना दुःख हुआ कि वह कई दिन तक रोती रहीं। यह सब बातें मेरे होश से पहले की हैं, किन्तु कई बार यही बात सुनाते हुए चाची जी कहा करती थीं कि उस समय उन्हें ऐसा लगा मानो उन्हीं का अपना बच्चा किसी ने उनसे छीन लिया हो। उसी नर्स से ही हमें यह भी पता चला था कि बालक को उसका पिता ही ले गया है।”

राजकुमारी सिर झुकाए बैठी रही। उपेन्द्र, मन ही मन में प्रसन्न, नमस्ते कहकर चला गया।

×

×

×

: १० :

उपेन्द्र चला गया। राजकुमारी सोफ़े पर से उठकर डाक्टर देव के चित्र के सामने जा खड़ी हुई। राजकुमारी का चढ़ता हुआ यौवन मानो एक बार फिर नए सिरे से उसके मुख पर आ गया। वह चित्र के सामने खड़ी-खड़ी हँस पड़ी।

“आप, देव जी ! सदा की भाँति मुसकरा रहे हैं। आप सदा मुझसे छिपते रहे हैं, आज मैंने आपको पा लिया है। आप कहा करते थे कि आपका प्रेम कहीं खो गया था किन्तु उसकी निशानी आपके

पास थी। मैं पूछती थी 'क्या'। आप हँसकर उत्तर दे देते थे 'उसकी याद'। आज मैंने वह निशानी देख ली है। देव जी ! आपने मेरी भक्ति पर विश्वास नहीं किया, मुझे सब नहीं बताया। मैंने अपनी भक्ति के बल से आपके सम्बन्ध में सब-कुछ जान लिया है। '....आपका पुत्र.... आपका रक्त.... आपके प्रेम की जीती-जागती मूर्ति.... वह मेरी बेटी का पति होगा.... मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ....।'।

राजकुमारी हँसते-हँसते सोफे पर लेट गई। फिर अपने आप कहने लगी—“आप वास्तव में देवता हैं। अपने प्रेम को आपने कैसे पाला है? सारा यौवन बिता दिया, सारा जीवन लगा दिया, किन्तु अपने मृतप्रायः प्रेम को अपने हृदय से लगाए रखा। वह अवश्य ही कोई देवी होगी। कितनी भाग्यवान है वह जो आपने उससे प्रेम किया, इतना प्रेम जितना कि कोई पुरुष कर नहीं सकता। हाय, विचारी आप जैसे प्रीतम से जीवन में ही बिछुड़ गई, अपने बच्चे से बिछुड़ गई। काश, देव जी ! आप मुझे बता देते कि वह कहाँ है, मैं उसकी चरण-धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाती, उसकी पूजा करती, उसके दुखी हृदय से कहती “बहिन ! संसार की स्त्रियों में तुम सब से अधिक भाग्यशालिनी हो कि तुम्हें जीवन में ऐसा अनुपम प्रेमी प्राप्त हुआ जो तुम्हारा ही होकर रहा, केवल तुम्हारा, सदा सदा के लिए तुम्हारा।”

शान्ति की एक लहर-सी राजकुमारी के सारे शरीर में दौड़ गई। वह उस लहर में डूब गई, फिर धीरे-धीरे उसके होंठ हिले।

“आने वाले ! तुम आए थे मनु को मेरी निगाहों में गिरा देने के लिए, पर तुम क्या जानो तुमने उसे कौन से आकाश पर पहुँचा दिया है। मैं मधु से कहूँगी कि मनु किसी साधारण व्यक्ति का पुत्र नहीं, वह एक देवता की सन्तान है, तुम जीवन-भर उसकी पूजा करना। मधु तू कितनी भाग्यवान है कि तुझे देव जी का पुत्र मिल गया.....।” राजकुमारी आनन्द-विभोर हो गई।

इतने में द्वार पर खटखट हुई। राजकुमारी ने सोचा कहीं आनन्द

में विध्वन न पड़ जाय । फिर अपने आप ही हँसने लगी, आज तो विध्वन भी आनन्द का रूप धारण कर रहे थे ।

आने वाला और कोई नहीं, स्वयं डाक्टर देव था । देव के मुख पर कभी न दीख पड़ने वाली हल्की-सी घबराहट थी । रात वाली बात की चिन्ता ही उसे यहाँ खींच लाई थी । वह राजकुमारी का मन लेने आया था । उसे चिन्ता थी कि कहीं मनू की खुशी अधूरी न रह जाए ।

उसने राजकुमारी को बहुत प्रसन्न देखा । उसके मन में विचार उठा, न जाने वास्तविकता का ज्ञान होने पर राजकुमारी क्या सोचे । किन्तु देव को कुछ पूछने की आवश्यकता न पड़ी, कुमारी ने ही हँसकर कहा, “विवाह में अभी एक महीना है न !”

सुनकर देव डर-सा गया । कुमारी ने आगे कहा, “बहुत दिन हैं । क्या इससे जल्दी विवाह नहीं हो सकता ? मैं चाहती हूँ, अब तो मैं अधीर हो उठी हूँ, मनू जल्दी-से-जल्दी मेरा हो जाए, मेरा बच्चा बन जाए, आपका बच्चा मेरा बन जाए ।” राजकुमारी ने अपनी आँखें झुका लीं । डाक्टर देव की सारी शंकाएँ दूर हो गईं । वह समझ गया कि किसी प्रकार कुमारी यह जान गई हैं कि मनू डाक्टर देव का पुत्र है ।

×

×

×

: ११ :

मनू और मधु का विवाह आरम्भ हुआ और निर्विघ्न सम्पन्न हुआ ।

पारस्परिक सम्बन्ध ठीक उसी रूप में बने रहे, जिस रूप में प्रकृति ने उनका ताना बाना बुना था । हाँ, जब मधु ने मनू का आँचल थापा और मनू के साथ फूलों से लदी हुई गाड़ी में बैठी, उस समय राजकुमारी को लगा, आज उसकी अन्तरात्मा में एक अद्भुत रस का संचार

हो रहा है। मधु उसकी अन्तरात्मा थी, और मनु डाक्टर देव के कलेजे का टुकड़ा।

सम्बन्ध ठीक उसी रूप में बने रहे जिस रूप में प्रकृति ने उनका ताना बाना बुना था। हाँ, जब मधु और मनु ने राजकुमारी के घर से विदा होकर सरला और कृष्णलाल के घर का स्वागत स्वीकार किया और फिर दोनों ने आकर डाक्टर देव को प्रणाम किया, तब आशीर्वाद देते समय डाक्टर देव को लगा, ममता के दोनों पतले हाथ डाक्टर देव के हाथों के साथ मिलकर मनु को आशीर्वाद दे रहे हैं। मनु उसका अपना अंश था, मनु उसकी ममता का ही रक्त था।

X

X

X

: १२ :

रात के ग्यारह बज चुके थे। डाक्टर देव सोने वाला ही था जबकि उसके कमरे का दरवाजा खुला। मनु डाक्टर देव की गोदी में आ गिरा।

“पिताजी……” मनु डाक्टर देव से कसकर चिपट गया। डाक्टर देव ने सँभालना चाहा, किन्तु आज जब मनु सब कुछ जान गया था तब डाक्टर देव कैसे इनकार कर सकता था।

“पिताजी, आप जीवन-भर अपने आपको मुझसे छिपाते रहे हैं, पर अब और न छिपा सकेंगे।” मनु का मुँह आँसुओं से भीगा हुआ था। देव कुछ न बोल सका। वह मनु की पीठ पर हाथ फेरता रहा।

“पिताजी ! आप महान हैं ?” मनु की आँखों से अश्रुधारा बह चली। “आपने अपना सारा जीवन बलिदान कर दिया। कानून ने आपको पति स्वीकार नहीं किया, कानून ने आपको पिता नहीं माना। किन्तु कानून तो साधारण व्यक्तियों के लिए होते हैं आप असाधारण हैं, कानूनों से ऊपर हैं। कभी किसी पति ने इस प्रकार प्रेम न निभाया

होगा ! कभी किसी पिता ने अपनी आयु इस प्रकार न अर्पित की होगी ! पिताजी !....” मन् ने देव को अपनी भुजाओं में बाँध लिया था ।

देव का शरीर, जो अब तक मूर्तिवत् स्थिर था, हिला । पलकों में उमड़ते आ रहे मोटे-मोटे आँसुओं को उसने आँखों में ही लौटाने की चेष्टा की, किन्तु आँसू बलवान थे, पलकों को चीर कर निकल ही पड़े । मन् ने जीवन में प्रथम बार देव की आँखों में आँसू देखे ।

“तुम्हें किसने बताया ?” देव ने धीरे से पूछा ।

“स्वयं कृष्णलाल पिता जी ने । आप जानते हैं आज मेरी पच्चीसवीं वर्षगाँठ थी । कोई एक घण्टा हुआ, उन्होंने मुझे सब-कुछ बता दिया । आपका नाम भी बता दिया । उन्होंने कहा—“देव जी ने अपनी सारी आयु तुम्हारे लिए खर्च कर दी । मुझे तुम से जी भर कर पुत्र-प्रेम प्राप्त हुआ है, मैं जानता हूँ कि पुत्र-प्रेम की भूख कितनी बलवती होती है । यद्यपि देव जी ने सदा तुम पर असीम प्रेम रखा है, वह निःशंक होकर तुम्हें पुत्र नहीं कह सके । मेरे तो तुम हो ही, मुझसे छिन नहीं जाओगे, परन्तु देव जी को भी इस भूख की पूर्ति से वंचित न रखना ।” एक बात और थी । मेरे जन्म के सम्बन्ध में जब उन्होंने ठीक बात बताई तो सोचा कि कहीं मैं किसी प्रकार की निम्नता या घटियापन का अनुभव न करूँ, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा, “तुम्हारे लिए यह सबसे बड़ कर गौरव की बात है कि तुम देव जैसे व्यक्ति की सन्तान हो ।” मन् ने कहा ।

“कृष्ण सचमुच एक महान पुरुष है !” देव ने कहा ।

कुछ समय बीत गया । दोनों उसी प्रकार बैठे रहे । फिर मन् ने स्नेहपूर्ण आग्रह के साथ कहा—“पिता जी ! मुझे सब-कुछ बता दीजिए !”

देव हँस दिया और कहने लगा, “मैं उन दिनों डाक्टरी पढ़ रहा था । यह १९२३की बात है । गर्मी की छुट्टियों में मैं पहलगाम गया था । वहाँ हमारे तम्बू पास-पास थे । मैं एक गरीब घर का लड़का था, वह

एक बहुत अमीर घर की बेटी थी। वहाँ हमारा एक दूसरे से परिचय हुआ। इनारी रुचियों में अमीरी और गरीबी का अन्तर न था। उसके माता-पिता बहुत धन और सम्पत्ति के स्वामी थे, पर उसका सौन्दर्य और उसकी बुद्धि उनकी सम्पत्ति से भी बढ़कर थी। वहाँ पहाड़ों में और चील के वृक्षों तथा झरनों वाली उस घाटी में हम खेलते रहे। उन चोटियों पर हमने कई बार सूर्य को उदय होते हुए देखा, कई बार सूर्य को अस्त होते हुए देखा। तब हम यह सोच भी न सकते थे कि जीवन हमें अलग भी कर सकता है। चन्दनवाड़ी के पुल पर मैंने उसके कई चित्र लिए। उन चित्रों में वह बर्फ़ की देवी के समान दीख पड़ती है। उसका असली नाम कुछ और था। मैं कभी-कभी हँसी में उससे कहा करता था कि तुमने मुझ ऐसे निर्मोही लड़के को अपनी मोह-ममता के पाश में बाँध लिया है। बस इसी से उसने अपना नाम 'ममता' रख लिया था। वह कहा करती थी कि जब तक ममता जीवित रहेगी आप कहीं छोड़कर तो न जा सकेंगे ! पगली ममता ! न मैं जानता था और न वह जानती थी कि ममता से जीते जी भी बिछुड़ना होगा !

“प्रकृति अपने खेल खिला कर ही रहती है। हमारे पूर्ण प्रेम ने यह न सोचा कि वह अभी कानून की दृष्टि से अपूर्ण है। हमने केवल ईश्वर को साक्षी मानकर एक दूसरे को चुना था, विवाह की कोई रीति इससे बड़ी नहीं हो सकती। मैं यह नहीं कहता कि कानून की कोई कीमत नहीं, हाँ इतनी नहीं है कि उस पर कई जीवन सदा के लिए न्योझावर कर दिए जाएँ। और फिर वह साधारण लड़कियों जैसी लड़की नहीं थी, मैं साधारण लड़कों जैसा लड़का नहीं था। उस समय ममता गर्भवती थी जब कि उसके माता-पिता ने मेरे साथ उसका विवाह करने से इनकार कर दिया था, हमारे गन्धर्व विवाह को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

“वह अपनी मान-मर्यादा तज सकती थी, अपने माता-पिता का मोह छोड़ सकती थी, किन्तु उन्होंने उसे चौबीस घण्टे का बन्दी बना

लिया, उस पर पहरा बिठा दिया। उसकी ओर से मुझे यह संदेश भेजे गए कि मैंने उसका जीवन नष्ट कर दिया है, वह मुझ जैसे साधारण और गरीब घर के लड़के से कदापि विवाह नहीं कर सकती, और न जाने और क्या-क्या उसकी ओर से मुझसे कहा गया। किन्तु इस सबको मैंने कदापि सच नहीं माना।

“तुम्हारा जन्म होते ही उन्होंने तुम्हें एक अस्पताल में दे दिया। मैं पीछे-पीछे घूमता रहा, भटकता रहा, अस्पताल के मालिक से मिला, उससे सब-कुछ सच-सच कह डाला। मैं डाक्टरों पढ़ने वाला एक नव-युवक पन्द्रह दिन के बालक को लपेट कर अपने मित्र कृष्णलाल के यहाँ ले गया। उसने मेरी मित्रता की लाज रख ली। उसके कोई सन्तान न थी। और तब से तुम मेरी आँखों के सामने पलते रहे। मैंने कृष्णलाल को और सब-कुछ बता दिया था, केवल तुम्हारी माता का नाम और पता नहीं बताया था।” डाक्टर देव ने मनू के आगे अपने दिल का सारा भार उतार डाला।

“पर माँ का पता मुझे तो बता दीजिये।” मनू ने विनीत स्वर में कहा।

“इसे रहस्य ही रहने दो, मनू!”

“क्यों पिता जी?”

“उसके माता-पिता ने बहुत जल्दी किसी श्रीमंजरि घराने में उसका विवाह कर दिया था। उसके बाद मैंने उसे कभी नहीं देखा।”

“उनके सम्बन्ध में कुछ सुना भी नहीं?”

“बहुत थोड़ा। उन्हीं दिनों की बात है, तुम्हारे लिए एक आया रखी थी। वह आया उन्हीं के घर से नौकरी छोड़कर आई थी। उसने बताया कि ममता के एक लड़की हुई है, ममता ने उसका नाम ‘रंजू’ रखा है। मैं समझ गया कि क्यों उसने अपनी लड़की का नाम ‘रंजू’ रखा था। पहलगाम में दो-एक बार उसने मुझसे कहा था कि हम अपने बच्चे का नाम रंजू रखेंगे। वह अपनी बेटी में भी तुम्हें ही पा

लेना चाहती थी। मैंने भी उसी के कथनानुसार तुम्हारे लिए 'मनोरंजन' नाम चुना था। और रंजू के स्थान पर छोटा नाम 'मनू' रखा था। जब मैं तुम्हें 'रंजू' कह कर पुकारता था तब मुझे उसकी बहुत याद आती थी। उसने भूल की कि अपनी लड़की का यह नाम रखा। इस नाम के कारण वह तुम्हें नहीं भूल सकी होगी। और तुम्हें न भूल सकने में वह मुझे भी न भूल सकी होगी। यह दोनों बातें उसके नए जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं, यह उसने नहीं सोचा। मैं जान बूझकर कभी उसके निकट नहीं गया। मैं चाहता था वह धीरे धीरे अपने नए जीवन से परच जाय....."

"पर पिता जी, यदि आप चाहें तो उनका पता लगा सकते हैं।"

"वह सदा मेरे जीवन में बनी रहेगी, हाँ, मुझे उसके जीवन में नहीं रहना चाहिये।"

"पिताजी ! आपने इतनी बातें बताई हैं, यह भी बता दीजिए कि वह किस घराने में हैं।"

आजकल का तो मुझे पता नहीं। किसानों से पहले वह लोग लाहौर में थे। लारेंस बाग के पास ही उनकी कोठी थी। उसके पति का नाम जगदीश चन्द्र है। मनू....."

"जी !"

"क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं"

"कुछ तो है, मुझे बताओ।"

"कुछ नहीं। मधु के कालिज में एक लड़की पढ़ती है, उसका नाम रंजू है। मुझे उसका ध्यान आ गया था।"

"पगला कहीं का। क्या यह जरूरी है कि वह रंजू वही हो। ऐसी घटनाएँ उपन्यासों में घटा करती हैं, वास्तविक जीवन में नहीं।"

"पिताजी ! अनेक बार सत्य कल्पना से भी कहीं अधिक रोमांचक होता है।"

“हाँ, मन् । पर छोड़ो, किन विचारों में पड़ गए हों । मैं तुम्हें एक बात बताने जा रहा था ।”

“जी !”

“तुम्हें जब भी अपनी माँ का ध्यान आए तो श्रद्धा से मस्तक नवा देना । मैं आज भी उसकी पूजा करता हूँ । तुम नहीं जानते, किन्तु मेरे कहने पर विश्वास करो वह एक देवी से भी अधिक पवित्र, सती से भी अधिक पूज्य है । निस्सन्देह उसके प्रेम में सत्ता होगी ही । उसी की पुण्यस्मृति के सहारे ही मैं जीवित रह सका हूँ ।”

“पिताजी !” मन् को आगे यह कहने की आवश्यकता न पड़ी कि अपनी माता के लिए उसके हृदय में कितनी श्रद्धा है, उसके मुख पर एक भक्ति-भाव स्पष्ट चोन्नत रहा था ।

“मन् !”

“जी !”

“ज़िला हज़ारी बाग़ में राँची के आसपास कहीं अस्पताल खोलने का मेरा विचार है । बिहार के गाँवों में प्रायः रोग फैले रहते हैं । बरसात में हज़ारों घर केवल ज्वर से ही बर्बाद हो जाते हैं ।”

“फिर मुझे जो आज्ञा हो ।”

“तुम्हारा यहाँ के अस्पताल में रहना भी उतना ही आवश्यक है । रमेश क्या कहता है ?”

“आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है । आप तो जानते ही हैं कि वह आपके एक संकेत पर अपना जीवन तक बलिदान दे सकता है । राँची तो क्या आप उसे कहीं भी जाने के लिए कह दीजिए, वह खुशी से चला जाएगा ।”

“वह बड़ा होनहार लड़का है । मुझे वह बहुत प्रिय है । अच्छा उससे कह देना, बहुत जल्दी ही दो एक दिनों में मेरे साथ चलने को तैयार हो जाए । मैं सब व्यवस्था करने के लिए राँची जाऊँगा ।”

“बहुत अच्छा” मन् ने कहा ।

कुछ देर बाद घर लौटते हुए मनू सोच रहा था : जब उपेन्द्र वाली घटना हुई थी, तब मैं रंजू के घर गया था, वहाँ रंजू की माँ से भी भेंट हुई थी। पर मैं न तो रंजू की माँ का नाम जानता हूँ, न उसके पिता का। यह तो मैं जानता हूँ कि वह लाहौर से आए हैं, किन्तु लाहौर से तो और भी बहुत से लोग आए हैं। रंजू भी कई एक हो सकती हैं। किन्तु इस रंजू की माँ बहुत ही भली हैं। ऐसी स्त्रियाँ गिनी चुनी ही होती हैं।

×

×

×

: १३ :

डाक्टर देव रमेश को लेकर राँची चला गया। हर दूसरे-तीसरे दिन मनू के पास डाक्टर देव के पत्र आते थे जिनमें बहुत कुछ लिखा होता था।

डाक्टर देव ने वहाँ ज़मीन ले ली थी और उस पर अस्पताल बनवाने के कार्य में संलग्न था। कभी पत्र में लिखा होता—“बिहार में बहुत बड़े-बड़े जंगल हैं जिनमें माँझी, बिरोहर, उराँव, गंजू, तुरी, मातो, भुइँये, दसाध, सुंड़ी, कुर्मी कितनी ही जातियाँ रहती हैं। माँझी तीर चलाने में बड़े प्रवीण होते हैं। जहाँ इन्हें पता लगा कि अमुक स्थान पर शेर, चीता, लकड़बग्घा या बारासिंघा है, सब के सब तीर कमान लेकर दौड़ निकलते हैं। बिना शिकार किए लौटने को अपनी हेठी समझते हैं। इन हिंसक पशुओं के साथ बड़ी चतुरता से आँख-मिचौनी खेलते हैं। विरोहर जति के लोग भी अच्छे शिकारी होते हैं। शिकार ही उनकी जीविका का साधन है। यह लोग कैंद, कनोद, कटहर, महुआ, ताड़, खजूर, जामुन, आम, डूमर, पिंडार, कटेल, पिठोर, मकर आदि वृक्षों के फल खाकर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। कभी-कभी इन्हें आलू, शकर कन्दी, गोंदली या कोई अन्न भी प्राप्त हो जाता है।”

एक बार डाक्टर देव ने पत्र में लिखा कि अस्पताल भवन का निर्माण आरम्भ हो गया है।

डाक्टर देव के पत्र पढ़कर मनु के नेत्रों के सामने कुछ चित्र से उतर आते।

आज डाक्टर देव का एक पत्र आया, लिखा था—“जंगलों में रहने वालों का एक प्रसिद्ध नृत्य झूमर है। किन्तु माँझियों के झूमर नृत्य में एक विशेष आकर्षण होता है। पुरुष और स्त्रियाँ मिलकर दो दिन और एक रात लगातार नाचते रहते हैं। खाने-पीने के समय भी नृत्य का क्रम टूटने नहीं पाता। उनके शरीर का काला रंग नृत्य के उल्लास से दमक उठता है। विवाहों के अवसर पर जो झूमर नृत्य होते हैं उनमें वर-वधू भी भाग लेते हैं। उन अवसरों पर वातावरण में मदिरा की मस्ती होती है, झूमर की लय थिरकती है, और गीतों के बोल गूँजते हैं। उनकी निर्धनता के आगे सम्पन्नता भी सिर झुकाती है।”

मनु ने पढ़ा, पत्र हाथ में रह गया। मनु का सिर पीछे की ओर झुकते-झुकते कुर्सी की पीठ से जा लगा। मनु ने देखा:—“एक सुहावना निर्जन बन है, जहाँ आकर कुछ जंगली लोग नाचने लगे, काले-काले, फटे कपड़े पहने। नाचते नाचते उनके शरीर चमकने लगे, उनके मुख सुन्दर हो गए। उनमें कुछ पहिचाने हुए मुख भी थे। और सबों के बीच, उड़ते हुए पंखियों की भाँति वह नाच रहे थे। देव ममता का हाथ पकड़े हुआ था। वह नाच रहे थे, धरती नाच रही थी,……”

मनु देखता रहा।

मधु ने आकर उसके कंधे पकड़ उसे झकझोर डाला। मनु का स्वप्न भंग हो गया। मनु स्वप्न के आलोक से आनन्द-विभोर हो गया था। आज पहली बार उसने अपनी जन्म देने वाली माँ को स्वप्न में देखा था। मनु ने ममता को पहले कभी नहीं देखा था, आज अपनी कल्पना में उसने ममता को देख लिया।

आनन्द की मीठी लहर ने जब वास्तविकता की पथर-सी दीवार

की ओर देखा, लहर वूँद-वूँद होकर टह पड़ी। मनू की आँखें भर आईं। मनू ने सोचा:—“प्रेम तो इस पृथ्वी पर वर्जित है। ममता रुल गयी देव रुल गया। वह जीवन के आबाद शहरों में कभी भूमर न नाच सके, कभी एक-दूसरे का हाथ न पकड़ सके, क्योंकि वह जाति के के माँझी नहीं थे, माँझियों की भाँति की निर्धन नहीं थे, माँझियों की भाँति अशिक्षित नहीं थे, माँझियों की भाँति जंगली नहीं थे। वह तो सभ्य जगत के बुद्धिमान और सज्जन व्यक्ति थे। वह भूमर न नाच सके, वह एक दूसरे का हाथ न पकड़ सके।”

×

×

×

: १४ :

आज न जाने क्यों मनू को मधु के कालिज वाली लड़की रंजू का रह-रह कर ध्यान आ रहा था। दोपहर को मनू रंजू के घर की ओर चल दिया। उसका दिल धक्-धक् कर रहा था। यदि रंजू ने सचमुच अपने पिता का नाम जगदीशचन्द्र बता दिया तब वह जीवन की इस आकस्मिक भेंट को कैसे सहन करेगा। यदि रंजू ने अपने पिता का नाम कुछ और बताया तब तो वह बिलकुल निराश हो जाएगा।

मनू रंजू के घर पहुँच गया। रंजू उससे बड़े शिष्टाचार से मिली। वह मनू से बहुत परिचित नहीं थी और न ही मनू ने उसे अपने विवाह में आमन्त्रित किया था। केवल उपेन्द्र वाली घटना के दिन उनकी भेंट हुई थी।

मनू धड़कते हुए हृदय से इधर-उधर की साधारण बातें करता रहा। फिर साहस करके उसने रंजू के पिता जी का नाम पूछा।

“मैंने शायद आपको पहले भी बताया था कि हम लाहौर रहा करते थे। मेरे पिता जी की सारी सम्पत्ति पंजाब के विभाजन ने हम से छीन ली। किन्तु सबसे गहरी चोट हम पर यह पड़ी कि हमारे पिता

जी हमें छोड़ कर चले गए। उनकी मृत्यु बड़े ही दुखदाई ढंग से हुई थी। मेरी माता जी बहुत काल से बीमार हैं, उनके लिए यह वज्र-प्रहार और भी असह्य है.....” रंजू कह रही थी।

“आपके पिता जी का नाम.....” मनू का हृदय धड़कने लगा।

“जगदीशचन्द्र।” रंजू ने कहा।

“मनू ने सुना। उस समय मनू के मुख पर जो भाव प्रकट हो रहे थे, उन्हें वह छिपा न सका।

“आप आश्चर्य में पड़ गए दीख पड़ते हैं। क्या आप उन्हें जानते थे?”

“नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। वैसे, देश का इतना भारी नाश हृदय में व्याकुलता उत्पन्न कर देता है।” मनू ने कहा। अपने मन की दुबिधा को मिटाने के लिए मनू रंजू की माँ का नाम भी पूछना चाहता था, किन्तु माँ का नाम पूछना उसे बड़ा अनुचित-सा जान पड़ता था।

मनू चुप रहा। फिर दोनों और बातें करते हुए रंजू की माँ के पास चले गए। वह बिस्तर पर लेटी हुई थी। यद्यपि समय ने और सदा के रोग ने मुख की कान्ति वह न रहने दी थी, फिर भी उसके मुख पर एक मधुर मुद्रा हर समय बनी रहती थी। मनू को लगा मानो यही उसकी माँ हो। मनू का जी किया कि वह जाकर अपनी माँ से लिपट जाए, उसके गले से लग जाए, उसके रोम-रोम में समा जाए, उसका पुत्र उसको दे दे। किन्तु वह सँभल गया। कहीं माँ को इस रूग्णावस्था में किसी याद का अचानक धक्का न लग जाय, कहीं वह माँ को प्राप्त करते-करते खो न बैठे।

मनू मुस्करा कर उसकी चारपाई की पट्टी पर बैठ गया। रंजू की माँ को मनू पहले दिन से ही अच्छा लगा था जबकि वह रंजू को उपेन्द्र के हाथों से छुड़ा कर घर छोड़ने आया था।

आज रंजू की माँ ने उलाहना दिया कि वह इतने दिनों तक क्यों नहीं आया।

मनू कह रहा था कि वह लज्जित था कि इतने दिनों तक नहीं आ सका था, इधर उसका विवाह भी हो गया था और वह बहुत व्यस्त रहा था, कि इतने में रंजू अपने पिता जी के चित्र ले आई। वह मनू को चित्र दिखाती रही और चित्रों के बीच में रंजू की माँ का एक चित्र भी था। मनू देखता रहा, फिर अचानक बोल उठा—“माता जी का नाम भी बहुत सुन्दर-सा ही होगा ?” कहने की तो मनू कह गया पर उसे स्वयं ही यह प्रश्न बड़ा बेतुका-सा लगा। पर वह कह चुका था, और कही हुई बात को लौटा न सकता था।

रंजू हँस पड़ी। उसकी माँ भी हँस पड़ी और कहने लगी, मेरा नाम ? मेरे लिए अवश्य सुन्दर है, दूसरों को शायद विचित्र-सा लगे। मैंने स्वयं अपना नाम रखा था—ममता।”

मनू बिना सोचे-समझे माँ की ओर मुक गया। किन्तु इससे पहले कि और कुछ प्रकट हो जाए, उसने अपने आपको सँभाल लिया, और माँ का हाथ अपने हाथ में लेकर कहने लगा—“आप जल्दी से स्वस्थ हो जाइए न !”

“मनू बेटा ! तुम मुझे बड़े ही अच्छे लगते हो।” ममता ने कहा।

“फिर मेरा कहा मानिये, अच्छी हो जाइये।”

“नहीं, मनू जी ! जीवन की डोरी पहले ही बहुत लम्बी हो चुकी है। केवल एक ध्यान रहता है, रंजू का विवाह.....।”

“आप रंजू का विवाह करेंगी, रंजू को प्रसन्न देखेंगी। आपने मुझे भी बेटा पुकारा है, मेरे लिए आप जीवित रहेंगी.....।” मनू का बहुत जी किया कि कुछ और भी कह डाले, परन्तु वह चुप ही रहा। फिर रंजू से बोला—“तुम भाभी से मिलने कब आ रही हो, तुम्हारे कालिज वाली मधु अब तुम्हारी भाभी बन गई है न।”

इसी प्रकार बातें करते और फिर आने का वचन देकर मनू वहाँ से चला आया।

×

×

×

मनू अब प्रायः प्रतिदिन रंजू के घर जाता था। रंजू को बहन कहता था। रंजू की रीस में ममता को माँ कहता था। परन्तु उसने और कुछ नहीं बताया था। ममता के घर में एक प्रकार की प्रफुल्लता-सी आ गई। माँ बेटी दोनों मनू की प्रतीक्षा किया करतीं। ममता बिस्तर पर पड़ी-पड़ी द्वार की ओर देखती रहती। ममता अब चारपाई से उठ नहीं सकती थी। दुर्बलता दिन-दिन बढ़ रही थी। परन्तु इधर दिन कुछ अधिक रोचक हो गए थे।

“माता जी ! कभी-कभी बालक हठ भी करते हैं।” एक दिन मनू ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक भाव से कहा।

“पर इतना समझदार बालक क्या हठ करेगा ?” ममता हँस पड़ी।

“यदि कोई हठ पकड़ ही ले, तो कहिए मानेंगी ?”

“हठ करते समय यह प्रश्न नहीं किया करते, वह तो हठ करते हैं और उसे मनवा के छोड़ते हैं।” ममता ने हँसकर कहा। मनू माँ की समझदारी की पहले ही सराहना किया करता था, वह हँस दिया।

“अच्छा तो अब हठ करूँगा और मनवा कर ही छोड़ूँगा।”

“इतने अच्छे बच्चे की हठ भी अच्छी ही होगी।”

“तो कुछ दिनों के लिए मैं आपको कहीं ले जाना चाहता हूँ, आप तैयार हो जाइये।”

“अच्छा जी—हमें कोई निमन्त्रण नहीं, हम यहीं रहेंगे।” पाम ही से रंजू ने कहा।

“माँ को हठ करके मनाया जाता है, बहिनों को आदेश देकर।” मनू हँसने लगा।

“कहाँ ?” ममता ने पूछा।

“जहाँ मैं जाऊँ। मेरे पिताजी भी डाक्टर हैं। मेरी नई सीखी हुई डाक्टरी उनके अनुभव के आगे कुछ नहीं है। उनका यहाँ भी एक

अस्पताल है, किन्तु वह आजकल ज़िला हज़ारीबाद में हैं। वहाँ वह एक नया अस्पताल बनवा रहे हैं। गाँवों के लिए वह....”

“पगला बेटा ! इतनी लम्बी यात्रा के लिए मुझ में दम ही कहाँ है। मेरा जीवन इतना आवश्यक नहीं मनु, कि जिसके लिए इतना सब किया जाय।” ममता ने निराशापूर्ण स्वर में कहा।

“आवश्यक होने न होने का प्रश्न हम स्वयं हल कर लेंगे—आपके स्वास्थ्य को आपकी दया पर नहीं छोड़ सकते।”

“यदि अवश्य ही दिखाना चाहते हो तो जब कभी तुम्हारे पिताजी दिल्ली आएँगे तब सही।” ममता ने टालना चाहा।

“नहीं, माँ ! मेरा यह हठ आपको मानना पड़ेगा। वह देहात का खुला वातावरण, मीलों तक जंगल-ही-अंगल। जीवन प्रकृति के इतने निकट कुछ और ही होता है। शहरों की जलूसों जैसी भीड़ में तो कभी-कभी मनुष्य का दम घुटने लगता है। मेरी अच्छी माँ, मान जाइये !” मनु का हठ विनती में परिवर्तित हो गया।

ममता की भावनाओं में एक जाग्रति-सी हुई। उसके मुख पर एक आलोक-सा आ गया। वह मनु जैसे प्यारे बच्चे के साथ प्रकृति की खुली वायु में विचार सकेगी, रंजू और मनु बहिन भाइयों की भाँति खेलेंगे, वह स्वतन्त्र और सुहावने जीवन का एक श्वास भर सकेगी। ममता मान गई। पति की मृत्यु के बाद उसके जीवन का श्वास निरन्तर घुटता ही जा रहा था।

रंजू के दर्ष का पारावार न था। उसने भगवान् को धन्यवाद दिया कि अब उसकी माँ कुछ स्वस्थ हो जाएगी। माँ के अतिरिक्त इस संसार में उसका अपना और कौन था।

एक-दो दिनों में ही गाड़ी में सीटें रिज़र्व करा ली गईं। उनके साथ एक-एक बक्स, एक-एक बिस्तर, और छोटी-छोटी दो-तीन चीज़ें और थीं। मनु ने घर से लेकर स्टेशन तक टैक्सी की थी। सफ़र लम्बा था—पर गाड़ी केवल एक ही बार बदलनी पड़ती थी। मनु ने फ़र्स्ट

क्लास का एक डब्बा रिजर्व कराया था—दो सीटों वाला। पैसे तीन सीटों के लिए खर्चे गए, पर वे बैठे दो सीटों वाले डब्बे में। ममता को पूरी तरह आराम था। गाड़ी चल रही थी।

“मनू ! मुझे यह यात्रा बहुत ही भली लग रही है। बहुत समय हो गया, इतनी हल्की जान पड़ने वाली यात्रा नहीं की। मैं अब ठीक से उठ भी नहीं सकती, अपने शरीर से लाचार हो गई हूँ, फिर भी आज वर्षों के इस रोगी शरीर में कुछ हल्कापन जान पड़ रहा है।”

गाड़ी के कूपे में वह तीन प्राणी ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो वह एक छोटा-सा परिवार हो जिसमें एक मनू जैसा बुद्धिमान और तरुण पुत्र भी हो।

“माँ ! अपने अतीत की कोई सुन्दर-सी बात सुनाइये।” मनू ममता से चिमट कर बैठ गया। कभी-कभी प्यार में वह ममता को ‘जी’ के साथ सम्बोधन न कर केवल ‘माँ’ ही कह देता था।

ममता मुस्करा कर रह गई। उसे ध्यान आया कि जीवन के इतने लम्बे वर्ष उसने स्कूल के एक स्टॉफ-क्वार्टर में रहकर बिता दिए। प्रति-दिन सूर्य अपने नियम के अनुसार उदय होता था और अस्त हो जाता था। न किसी भोर में कोई आशा होती थी, न किसी संध्या में कोई प्रतीक्षा। जीवन मशीन की एक-जैसी खड़-खड़ की भाँति चलता गया था। ममता की आयु बीत गई थी।

ममता विचारों में मग्न रही। मनू ने उसके हाथों को सहलाया।

“क्या ही अच्छा हो यदि जीवन ऐसे ही चलता रहे। इस यात्रा के मार्ग में उस समय तक कोई स्टेशन न आए जब तक कि यह जीवन-यात्रा अपने अन्तिम पड़ाव पर न पहुँच जाए !” ममता ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद कहा।

‘माँ ! शायद मार्ग में आने वाले किसी स्टेशन पर खड़ी हुई कोई खुशी जीवन का रास्ता देखती हो ! माँ, यह गाड़ी मार्ग में किसी स्टेशन पर तो खड़ी होनी ही चाहिये।’ मनू हँस पड़ा।

“नहीं, मनु ! तुम नहीं जानते, खुशियों के स्टेशन मेरी जीवन-यात्रा के मार्ग में नहीं आते ।” पीली पड़ी हुई, दुर्बल ममता करवट बदल कर लेट गई ।

रंजू और मनु ताश खेलते रहे, ममता देखती रही । रंजू और मनु हारते, जीतते, ताश सँभालते, फिर फैलाते, गाड़ी के इस घोंसले में नन्हें-नन्हें पत्तियों की भाँति चढ़कते रहे । दो दिन बीत गए ।

×

×

×

: १६ :

मनु दिल्ली से आते समय मधु और राजकुमारी को अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में और यात्रा के अपने साथियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ बता आया था । स्टेशन पर उतरते ही उसने अपने सब के पहुँचने का तार मधु और राजकुमारी को दे दिया ।

राँची रोड स्टेशन पर उतरकर डाक्टर देव के गाँव पहुँचने के लिए कुछ मील मोटर-बस में जाना पड़ता था । वहाँ पर एक छोटी-सी बस्ती थी, एक छोटा-सा बाज़ार और कुछ दूरी पर डाक्टर देव का नया बना हुआ अस्पताल । दूर तक जंगल फैले हुए थे जिनमें पतली-पतली पगडंडियाँ कटी हुई थीं । छोटी-छोटी चढ़ाइयाँ और उतराइयाँ भी थीं, पर अधिकतर मैदानी बस्ती थी । घरातल पहाड़ी और मैदानी दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण था । प्रायः एक गाँव दूसरे गाँव से कुछ मील की दूरी पर स्थित था । वहाँ के लोग, जिनमें अधिकतर जंगल के ठेकों पर काम करने वाले मजदूर थे, सुदृढ़ शरीर वाले थे, सारे दिन लकड़ियाँ काटते, ढाँते, लकड़ियों का कोयला बनाते, साँझ को पत्तों में ताड़ी पीते, कभी कभी खून खराबा भी कर डालते, रंग उनके अत्यन्त काले और पीले ।

विस्तृत आकाश के नीचे बिछी हुई विस्तृत धरती पर प्रकृति की हरियाली को बखेरते हुए वनों के वृक्ष पौधे बहुत ही शोभायमान थे। पपीतों का एक छोटा-सा बाग़ अस्पताल की दीवार के पास ही लगा हुआ था। खिली हुई धूप में डाक्टर देव जो सवेरे का थका हुआ था, कुछ देर से अपनी आराम कुर्सी पर लेटा हुआ था। इतने में एक देहातिन अपने बच्चे को गोद में लिये हुए आई। बच्चा कुछ अधिक ढीला था। डाक्टर को घर बुलाने का विचार शायद उसे उचित न जान पड़ा हो, वह बच्चे को उठाकर ले आई।

दुखियों के लिए डाक्टर देव का द्वार सदैव खुला रहता था, कोई भी समय कुसमय नहीं था, और वह स्वयं हर समय सहायता देने के लिए तैयार रहता था।

रमेश को अपना आचरण डाक्टर देव का सा बना लेने की लगन कब की लग चुकी थी। उसके लिए भी दिन-रात एक समान हो गए थे। डाक्टर देव रोगी को भीतर कमरे में ले जाकर देख रहा था।

बिल्डिंग के बाहर एक मोटर रुकी। उसमें मनु उतरा, रंजू उतरी, ममता उतरी। सामान उतारा गया। यात्रा की लम्बाई और थकान के कारण ही उस प्रदेश की हरियाली और मुक्त वातावरण ने कदाचित् उनपर अपना प्रभाव अधिक डाला था। ममता का चिरकाल के रोग से कुम्हलाया हुआ मुख भी किंचित् उत्फुल्ल दीख पड़ता था। ममता हँस रही थी, “दवाएँ तो जाने कुछ असर करेंगी या नहीं, पर इस यात्रा ने अवश्य कुछ दिनों के लिए और जीवन बढ़ा दिया है।”

मनु की एक उलझन सुलझने में न आ रही थी। रंजू के सामने वह ममता को कैसे डाक्टर देव के पास ले जाय। न जाने ममता पर क्या प्रभाव पड़े। रंजू को कुछ पता नहीं, कहीं वह घबरा न जाय।

रमेश ने बताया कि डाक्टर साहब भीतर एक रोगी को देख रहे हैं। रमेश कहकर मनु, ममता और रंजू को एक ऐसे कमरे में ले गया

जहाँ और कोई नहीं था। ममता थकी हुई थी, वह चारपाई पर लेट गई। रमेश चाय की व्यवस्था में लग गया।

मनू के लिये यह समय बड़ा ही विचित्र था। उसका हृदय धक-धक कर रहा था।

“रंजू बहिन ! हम तो तब जानें जब तुम अपने हाथ से पपीते तोड़ कर दिखाओ।” मनू ने रंजू को अस्पताल की दीवार के पास लगा हुआ पपीतों का बारा दिखाया।

“यह क्यों नहीं कहते कि पपीते खाने को जी कर रहा है।” रंजू हँस दी और पपीते तोड़ने चली गई।

मनू का हृदय अब फिर धड़क रहा था। जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षण निकट आता जा रहा था। मनू स्वयं डाक्टर देव के पास न जा सका। उसने रमेश से कहा कि डाक्टर साहब को इधर भेज दे। स्वयं मनू ममता की चारपाई पर बैठ गया।

“मनू जी ! तुमने मुझे अपने पिता जी का नाम तो बताया ही नहीं है।” ममता समझ रही थी कि अब डाक्टर साहब आने वाले हैं। मनू ने सोचा, अचानक परिचय कराने की अपेक्षा क्यों न वह कोई संकेत दे दे।

“डाक्टर देव राज !” मनू ने कहा।

“क्या कहा ?” ममता चौंक पड़ी।

“डाक्टर देव राज !” मनू ने अपने स्वर के कम्पन को वश में कर के कहा। फिर ममता की ओर आँख भर कर देखा।

“तुम्हारी माता जी कहाँ हैं ?” ममता का जी-घबरा रहा था। वह चारपाई से उठकर खड़ी हो गई।

“मेरी माता जी ! ...” मनू हँस पड़ा।

तब तक डाक्टर देव कमरे में प्रवेश कर चुका था।

ममता ने आँखें उठा कर देखा। मनू सोचता था, ममता अचेत हो

जाएगी, उसे सँभालना पड़ेगा; वह तो पहले ही इतनी दुर्बल है। परन्तु यह सब कुछ न हुआ।

ममता ने देखा, वही देव है। भला क्या वह न पहिचान सकती थी; वह तो उसे अगले युग में भी पहिचान सकती थी। अभी तो केवल पच्चीस वर्ष हुए थे।

“आप……” ममता को केवल दीवार का सहारा लेना पड़ा। उसके मुख पर एक पीली-सी झलक दौड़ गई।

“आप” शब्द में से एक स्वर फूटा; स्वर में से कुछ रूप-रेखाएँ उभर आईं। कल मनू का तार आया था “२६ तारीख सवेरे पहुँचूँगा, कोई मेरे साथ है।” तार के शब्दों में से ‘कोई’ का अर्थ स्पष्ट हुआ। डाक्टर देव ने ममता के कंधे के पास अपना सिर झुका कर कहा: “हाँ—मैं।”

मनू जानता था ममता अत्यन्त दुर्बल है, उसने ममता का हाथ पकड़ कर उसे चारपाई पर बिठा दिया, फिर धीरे से लिटा-दिया।

इतने में रंजू तीन पके हुए पपीते तोड़ कर लौट आई थी। डाक्टर देव ने रंजू को अपने मन ही मन में पहिचाना, और फिर उसे अपने गले से लगा लिया।

रमेश नौकर के हाथ चाय लिवा लाया था। रंजू ने प्यालों में चाय बनाई। डाक्टर देव के हाथ में चाय का प्याला देते हुए पूछने लगी, “मेरी माता जी ठीक हो जाएंगी?”

डाक्टर देव ने फिर रंजू को एक बार प्यार किया, आँखों के कोनों में आए हुए आँसुओं को पीछे लौटा लिया, धीरे से कहा, “मैं उनका जीवन भगवान से माँग लूँगा।”

चाय समाप्त हुई। रमेश रंजू को अस्पताल दिखाने के लिए ले गया। उधर कोई रोगी आ गया था, डाक्टर देव को भी जाना था।

“मैं जाऊँ?” डाक्टर देव ने ममता की चारपाई पर ज़रा झुक कर कहा।

ममता ने झुके हुए मुँह की ओर जी भरकर देखा। उससे कुछ बोला न गया। 'न' करने के आशय से उसने केवल सिर हिला दिया। देव हँस दिया।

ममता के मन में विचार उठा कि मनु अपने जी में क्या सोचता होगा। स्थिरतापूर्वक कहने लगी, "मनु जी ! तुम नहीं जानते। बहुत दिन शीत गए, तब के यह मेरे परिचित हैं।"

"केवल परिचित ही।" डाक्टर देव ने मुस्करा कर कहा।

"माँ ? कौन नहीं जानता ? मैं ? तुम्हारा अपना रंजू ?" मनु माँ के कलेजे से लग गया।

"रंजू ! मेरा रंजू !" इस बार ममता अचेत हो गई। डाक्टर देव ने एक इन्जेक्शन दिया। कुछ देर बाद ममता के शरीर में शक्ति आ गई।

"मैंने तुम्हारे रंजू को इतना बड़ा कर दिया है।" डाक्टर देव जीवन-भर की कमाई हुई गम्भीरता के साथ हँस दिया।

×

×

×

: १७ :

"आपने आज का अखबार देखा है ?" मनु ने चाय पीते हुए डाक्टर देव से पूछा।

"आज का ? नहीं अभी समय नहीं मिला।"

"परसों बम्बई में भारी सुसुद्री तूफ़ान आया है। मकानों की छतें उड़कर कहीं-कहीं जा पड़ी हैं, बिजली के तार, खम्भे, टूटकर गिर पड़े हैं, रेलगाड़ियाँ उलट गई हैं, लाइनें टूट गई हैं, जान और माल की बहुत हानि हुई है।"

"ये तूफ़ान, ये बवण्डर बड़े ही भयानक होते हैं।" डाक्टर देव ने कहा।

रमेश आज भीलों का नाच देखने जा रहे थे, चाय पी कर चले गए कमरे में ममता और डाक्टर देव रह गए ।

“पहले, सब-कुछ होते हुए भी मैं जीवन में आपको कुछ न दे सकी, अब तो मेरे हाथ ही खाली हैं ।” ममता सोचने लगी, देव ने इतना लम्बा जीवन किस प्रकार केवल स्मृतियों के सहारे काटा होगा ।

“ममता ! समाज के हाथ अवश्य खाली हैं । पर तुम्हारे हाथ कभी भी खाली नहीं हुए । मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिये ।”

“मैं……” ममता ने सिर झुका लिया ।

“ममता ! तुम अपने स्वर्गवासी पति के नाम का सदा आदर करती रहोगी । रही बात प्रेम की, सो वह सदा मेरा था, अब भी मेरा है हमारा प्रेम अब सम्बन्ध-सूत्र में बँधने के मुहताज नहीं है । मैं इतनी आयु तक इस संसार में तुम्हारे अस्तित्व को अनुभव करते हुए ही जीवित रहा हूँ । और अब तो तुम्हें अपनी आँखों के सामने देख भी सकता हूँ । इससे बढ़कर जीवन में मेरी और क्या मनोकामना हो सकती है ! प्रेम की इस मंजिल में न यौवन है, न बुढ़ापा है, न शरीर है……” सन्ध्या समय की ठंड बढ़ने लगी थी, डाक्टर देव ने ममता के कंधों पर गरम दुशाले का पल्ला डाल दिया ।

“आप रोगियों को दवा दिया करेंगे, मैं उनकी सेवा किया करूँगी । यदि कभी ऐसा हो सका……” ममता का मुख ज्योतिर्मय हो उठा, मानो अब वह रोग-ग्रस्त न थी, अब वह रोगियों की परिचर्या में लग सकती थी ।

“क्यों नहीं हो सकेगा, ममता ! इसे कौन रोक सकता है ?” देव ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

“हाँ, कोई भी तो नहीं । मैं डर गई थी कि लोग कहीं यह सब भी मुझसे न छीन लें ।” ममता ने एक आह भरी ।

ममता को अपने पुराने रोग का एक तेज़ दौरा पड़ गया । डाक्टर

देव को इसी का डर था। देव डाक्टर था, वह जानता था कि ममता को इस असाध्य रोग से संसार को कोई शक्ति नहीं छुड़ा सकती थी। उसे केवल इतनी आशा थी कि वह खींचतान कर के ममता की जीवन डोरी को कुछ लम्बा कर लेगा। किन्तु रोग के इस भयानक आक्रमण ने डाक्टर देव की आशा पर पानी फेर दिया।

देव ने ममता को लिटा दिया। किन्तु ममता के मुँह से निकली हुई लहू की बड़ी धार ने मानो उसके जीवन की साँस को एक ही बार में खींच लिया था। वह बेसुध-सी पड़ी रही।

डाक्टर देव के जतन चलते रहे। मनु और रंजू भीलों का नाच देख कर रात को लौटे। ममता के प्राण मानो उन्हीं की प्रतीक्षा में अटके हुए थे। ममता ने उन्हें देखा और दोनों बच्चों के सिर अपनी छाती से लगा लिए। बच्चों ने अपने कण्ठ से फूटती हुई चीखों को बड़ी कठिनाई से रोके रखा, और फिर कमरे से बाहर चले गए।

ममता ने अपना हाथ आगे बढ़ाया। डाक्टर देव ने अपने हाथों में उसके दोनों हाथ ले लिये। फिर ममता का सिर अपनी गोद में रख लिया। ममता आनन्द-विभोर हो गई। ममता ने आँखें बन्द कर लीं, और सदा के लिए बन्द कर लीं।

रात्रि का अन्तिम पहर इसी भाँति बीत गया। किसी ने आकर डाक्टर देव के हाथ में एक तार थमा दिया। लिखा था ? “देव जी ! जिस बहिन को मैंने आपकी आँखों में वर्षों देखा है, उसके चरणों में आज मेरा प्रणाम दीजियेगा—राजकुमारी।”

उस समय डाक्टर देव के निश्चल शरीर में गति उत्पन्न हुई। उसने वह तार ममता के चरणों में रख दिया। उसके धैर्य का बाँध टूट गया। ममता की निर्जीव-देह को उसने अपने गले से लगा लिया।

×

×

×

